भोजन

क्या, क्यों और कैसे ?

लेखक

'विटामिन और हीनताजनित रोग,' 'सन्तति-निरोध' कब, क्यों और कैसे ?', 'यौन-मनोविकार कारण और विवरण' 'गर्भवती स्त्री और प्रसव-पूर्व व्यवस्था,' 'आपके बच्चे की खूराक' आदि पुस्तकों के प्रणेता और सम्पादक

डॉ॰ सुरेन्द्र नाथ

एम॰ बी॰ बी॰ एस॰

प्रकाशक

अवध पब्लिशिंग हाउस

लखनऊ

प्रथम संस्करण

मूल्य ४)

प्रकाशक
पं० भृगुराज भार्गव
अवध पब्लिशिंग हाउस
लखनऊ

मुद्रक
नवज्योति प्रेस,
पानदरीबा, लखनऊ

उपहार

समर्पण

उन्हें

जो इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहें

बैंगन बावरे

बुन्देलखण्ड की एक कहावत है—'किसी को बैंगन बावरे, किसी को बैंगन पथ्य' इसी को अंग्रेजी में रूपान्तरित कर के कहते हैं 'One man's food is poison for the other' इनसे अभिप्राय यह है कि जहाँ तक भोजन का सम्बन्ध है, प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग-अलग आवश्यकतायें हैं, जो कि उसकी आयु, लिंग भेद, शारीरिक अवस्था, स्वास्थ्य तथा कार्य आदि पर निर्भर करती हैं। भोजन का हमारे स्वास्थ्य और जीवन से अपरिहार्य सम्बन्ध है। किसे कैसा भोजन लाभप्रद होगा और कौन सा हानिकारक-यह एक आवश्यक प्रश्न है। हमारे समाज में तत्सम्बन्धी विषयों पर अनेकानेक भ्रमात्मक धारणायें प्रचलित हैं। गरम, ठंडा, सरदी-बादी ऐसी ही अनेकों बातें लोगों को भोजन के प्रति सन्दिग्ध रखती हैं।

भोजन सम्बन्धी विषयों पर व्यांवहारिक ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है। विशेष कर घर की स्त्रियों में। हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्तकों का प्रायः अभाव ही है। इसी भावना से प्रेरित होकर लेखक ने आहार-शास्त्र के आवश्यक विषयों पर लिखना प्रारम्भ किया था। इसके फलस्वरूप पहली पुस्तक 'विटामिन और हीनता-जनित रोग' मातृभाषा हिन्दी के प्राङ्गण में उपस्थित की जा चुकी है। 'भोजन क्या क्यों और कैसे ?' मेरी दूसरी कृति है।

इस पुस्तक में इन तीनों प्रश्नों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है। धर्म, समाज और रूढ़ि गत भावनाओं का समावेश रोकने का अधिक से अधिक प्रयत्न किया गया है। विषय का विकास धीरे धीरे और सुसम्बन्धित रूप में किया गया है। व्यवहारिक बातों पर अधिक ज़ोर देने के प्रयत्न

में कहीं कहीं पुनरावृत्ति भी करनी पड़ी है। शायद साधारण पाठक को कहीं कहीं विषय दुरूह प्रतीत हो, ऐसे स्थल आसानी से छोड़े जा सकते हैं। इन स्थलों पर विषय का विस्तृत विवेचन इस दृष्टि से किया गया है—कि अधिक से अधिक लोग इससे लाभ उठा सकें। पुस्तक को वैद्य, हकीम, तथा डाक्टर सभी के लिये उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक तथ्य तथा प्रचलित किंवदंत्तियाँ देकर विषय को अधिक से अधिक मनोरम बनाने का प्रयत्न किया गया है। साथ में आवश्यक चित्रों का उचित समावेश है। परिशिष्ठ में आहार तालिकायें तथा पाठकों की सुविधा के लिये पारिभाषिक शब्दों के अँग्रेजी तुल्यार्थ भी दिये गये हैं।

इतना सब होने पर भी पुस्तक अपूर्ण ही है। विभिन्न रोगों में पथ्यापथ्य विवेचन तथा अवस्था भेद से भोजन में परिवर्तन आदि आवश्यक बिषय हैं जिनका समावेश इसमें नहीं हो सका। आशा है शीघ्र ही पाठकों की सेवा में ये आवश्यक विषय भी इसी रूप में प्रस्तुत कर सकूँगा।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे गुरुवर डा० हरगोविन्द दयाल जी माथुर से जो सहायता प्राप्त हुई है उसके लिये मैं उनका आभारी हूँ।

अन्त में एक बात आवश्यक है—इसमें न कवियों का आनन्द है और न उपन्यास का मजा। इससे वही लाभ उठा सकेगा जो विषय-सम्बन्धी कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा से इसे पढ़ेगा।

मेडिकल कालेज
लखनऊ
पैथोलाजी विभाग

लेखक—

विषय सूची

भाग—१

(पृ० १–७५)

भोजन और उसकी आवश्यकता

भोजन के मूल अवयव

खनिज और हमारा स्वास्थ्य

विटामिन

जल

वायु

प्रकाश

भाग—२

(पृ० ७६-१११)

आहार पथ

भोजन की पाचन क्रिया

भोजन का आत्मीकरण

भाग—३

(पृ० ११२-१७६)

पशुजन्य खाद्य पदार्थ

अन्नवर्ग

कन्द-मूल, फल और मेवे

शाक-भाजी और उनका उपयोग

मिर्च--मसाले

भारतीय भोजन के कुछ दोष

(पृ० २०१-२०४)

भोजन बनाना

पकाने की आवश्यकता ; पकाने की क्रिया से परिवर्तन—गोश्त, वनस्पति वर्ग, दूध, विटामिन 'सी' पर प्रभाव ; सोडा डाल कर भोजन बनाना ; अन्य विटामिनों पर प्रभाव।

(पृ० २०५-२११)

भाग—६

(पृ० २१२-२४२)

परिशिष्ट—

———

चित्र सूची

भोजन

और

उसकी आवश्यकता

भोजन क्या है ?

'भोजन' शब्द से क्या तात्पर्य है ? किन पदार्थों को हम इस श्रेणी में रख सकते हैं ? इसका उत्तर पाने से पहले यह आवश्यक है कि हमें यह मालूम हो जाये कि हमारे शरीर को भोजन की आवश्यकता ही क्यों पड़ती है और उसके (भोजन के) क्या कार्य हैं ? तदुपरान्त भोजन शब्द की परिभाषा सरल हो जाती है। वे पदार्थ जो इन कार्यों में से किसी एक या अधिक का प्रतिपादन कर सकें 'भोजन' की श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। अभी इस परिभाषा में थोड़े से संशोधन की आवश्यकता है जो कि आगे चल कर बताया जायेगा।

भोजन की आवश्यकता

हमारे शरीर की निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भोजन आवश्यक है :—

(१) वृद्धि—जीवन-पर्यन्त हमारे शरीर के विभिन्न अवयवों की वृद्धि हुआ करती है। जन्म से लेकर लगभग २५ वर्ष की अवस्था तक जब तक मनुष्य पूर्ण युवा नहीं हो जाता, यह वृद्धि दृश्य रूप से होती है। जन्म के बाद प्रति दिन, प्रति सप्ताह और प्रति वर्ष हमारे शरीर का भार बढ़ता जाता है, अवयव पुष्ट होते जाते हैं और शरीर के तमाम तन्तुओं का विकास और वृद्धि होती है। हमारे शरीर की इस वृद्धि और विकास के लिये भोजन आवश्यक है।

जन्म से पहले भी जब शिशु नौ महीने तक गर्भावस्था में मां के पेट में रहता है, उसका विकास एककोषीय भ्रूण से पूर्ण शिशु में होता है। इस विकास और वृद्धि के लिये भी भोजन आवश्यक है। इसीलिये गर्भवती स्त्रियों को अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक भोजन की आवश्यकता होती है।

(२) मरम्मत—हमारे शरीर के सब अवयव सदैव गतिशील रहते हैं। हमारा हृदय निरन्तर स्पन्दित रहता है और शुद्ध रक्त शरीर के तमाम भागों में भेजा करता है; फेफड़े निरन्तर शुद्ध वायु लिया करते हैं; हमारा आमाशय और पाचन संस्थान भोजन की पाचन-क्रिया और आत्मीकरण में तल्लीन रहता है; मलाशय, गुर्दे और त्वचा मल-निष्कासन में निरत रहते हैं; मस्तिष्क तमाम शरीर के कार्यों का संचालन करता है और मांस पेशियां हमारे सभी शारीरिक कार्यों के लिये आवश्यक हैं।

इस भांति यह स्पष्ट है कि हमारे शरीर की मशीन के सब पुर्जे जीवन-पर्यन्त अपना अपना कार्य निरवरोध किया करते हैं। किसी मशीन (दृष्टान्त के लिये रेल के इञ्जन को ही ले लीजिये) के चलते चलते उसके पुर्जे घिसने लगते हैं। यही हाल हमारे शरीर की मशीन का भी है। परन्तु यहां इञ्जन और मनुष्य शरीर

में एक अन्तर है। इञ्जन के घिसे हुये पुर्ज़ों को ठीक करने के लिये हमें उन्हें लोहे के वैसे ही बने हुये पुर्ज़ों से बदलना पड़ता है। परन्तु हमारे शरीर के लिये यह बात लागू नहीं होती। हमारा शरीर अपने इन पुर्ज़ों का पुनर्निर्माण स्वयं कर सकता है—परन्तु इसके लिये भोजन आवश्यक है। इस भांति भोजन का दूसरा कार्य हमारे शरीर के टूटे-फूटे कल-पुर्ज़ों की मरम्मत करना भी है।

(३) शक्ति—यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक कार्य के लिये कुछ न कुछ शक्ति की आवश्यकता होती है। रेल के इंजन में जब कोयला जलता है तो उसमें निहित शक्ति बायलर में पानी को भाप के रूप में परिणत कर देती है। और इसी वाष्प-शक्ति से इंजन का पिस्टन चलता है जिससे कि उससे सम्बन्धित पहिये घूमने लगते हैं और रेलगाड़ी चल पड़ती है। यह शक्ति भिन्न भिन्न प्रकार से प्राप्त हो सकती है। रेल के इंजन के लिये इसे कोयले से और मोटर के लिये पेट्रोल से प्राप्त करते हैं।

यही हाल हमारे शरीर की मशीन का भी है। किसी भी ऐच्छिक कार्य के लिये (जैसे दौड़ना, कसरत करना, हल चलाना, आदि) हमें शक्ति की आवश्यकता होती है। साथ ही साथ शरीर के ऐसे अनैच्छिक कार्य भी जो हमारे जीवन के लिये नितान्त आवश्यक हैं और सदैव हमारे अनजान में ही होते रहते हैं (जैसे हृदय और फेफड़ों के कार्य); उनके लिये भी हमें शक्ति की आवश्यकता होती है। दृष्टान्त के लिये मोटर को ही ले लीजिये। एक मोटरकार एक स्थान पर स्थिर खड़ी हुई है, परन्तु उसका इंजन चल रहा है। इसके लिये कुछ शक्ति की आवश्यकता है। इसी भांति हमारे जीवन के आवश्यक शारीरिक कार्यों के लिये भी कुछ शक्ति वांछित है। जब वह खड़ी हुई मोटरकार चलने लगती है तब उसे और अधिक शक्ति की आवश्यकता
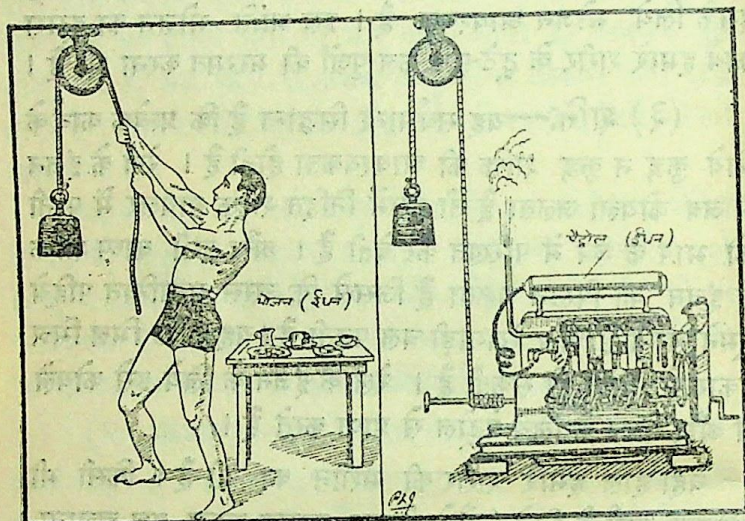
चित्र सं०—१

शारीरिक कार्यों के लिये आवश्यक शक्ति प्राप्त करने के लिये भोजन उसी प्रकार आवश्यक है जैसे कि मशीन के इंजन के लिये पैट्रोल ।

होती है और ज्यों ज्यों उसकी गति बढ़ती जाती है त्यों त्यों शक्ति की भी अधिक आवश्यकता होती है। इसी भांति जब हमारा शरीर अधिक कार्य करता है, उसे उतनीही अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। यह सब शक्ति हमें भोजन से ही प्राप्त होती है।

इसके साथ ही साथ भोजन से प्राप्त हुई शक्ति हमारे शरीर का तापमान स्थिर रखने के लिये भी आवश्यक है जो कि स्वस्थ शरीर के लिये ९८·४°फ० है।

भोजन से प्राप्त हुई शक्ति की पारिमाणिक व्याख्या

किसी मनुष्य को कितने भोजन की आवश्यकता है इसके लिये यह जानना आवश्यक है कि उसे कितनी शक्ति की दैनिक आवश्यकता होती है। भोजन से हमें शक्ति उष्णता के रूप में प्राप्त होती है। जिस भांति किसी अन्य पदार्थ की पारिमाणिक व्याख्या के लिये हमें एक इकाई अथवा यूनिट निश्चित करनी पड़ती है—उदाहरणतः-मन, सेर, छटांक आदि वजन के लिये, इंच अथवा सेंटीमीटर लम्बाई के लिये, रुपया धन के लिये, इसी भांति यह आवश्यक है कि भोजन से प्राप्त हुई शक्ति की पारिमाणिक व्याख्या और उसकी दैनिक आवश्यकता आदि की विवेचना करने से पहले हम उसकी एक आधारभूत यूनिट अथवा इकाई निश्चित करलें।

कैलोरी—शक्ति की इस इकाई को 'कैलोरी' कहते हैं। एक किलोग्राम जल का तापमान १° सेंटीग्रेड बढ़ाने के लिये जितनी उष्णता (शक्ति) की आवश्यकता होगी उसे एक कैलोरी कहते हैं। अब आगे 'कैलोरी' शब्द से हमारा प्रयोजन उष्णता अथवा शक्ति की इस इकाई से ही होगा।

दैनिक आवश्यकता—किसी व्यक्ति की भोजन की दैनिक आवश्यकता जान सकने से पहले यह जरूरी हो जाता है

कि हमें उसके शारीरिक कार्यों के लिये आवश्यक शक्ति की दैनिक आवश्यकता का ठीक अनुमान हो।

'लीग ऑफ़ नेशन्स' द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों के कमीशन ने मनुष्य की शक्ति-सम्बन्धी आवश्यकता पर निम्न वक्तव्य दिया है :—

(क) एक पूर्ण स्वस्थ युवा पुरुष अथवा स्त्री जो कि शीतोष्ण कटिबन्ध में रहते हुए साधारण दैनिक जीवन बिताते हैं—और कोई शारीरिक परिश्रम भी नहीं करते—उन्हें लगभग २४०० कैलोरी प्रति दिन शक्ति की आवश्यकता है।

(ख) शारीरिक परिश्रम करने पर इन २४०० कैलोरी की अपेक्षा निम्न शक्ति की और अधिक आवश्यकता होगी—(काम करने के समय के अनुसार)।

हलका परिश्रम—	७५ कैलोरी प्रति घंटा
साधारण परिश्रम—	७५—१५० कै० प्रति घंटा
कठिन परिश्रम—	१५०—३०० कै० प्रति घंटा
बहुत कठिन परिश्रम—	३०० अथवा अधिक कै० प्रति घंटा

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है और एक औसत भारतीय कृषक को काफ़ी शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है। 'लीग ऑफ नेशन्स' द्वारा नियुक्त कमीशन ने शारीरिक परिश्रम न करने वाले युवा मनुष्य के लिये लगभग २४०० कैलोरी प्रति दिन की आवश्यकता का स्टैंडर्ड रक्खा है। परन्तु भारत जैसे उष्ण देश में यह कुछ अधिक प्रतीत होता है। भारत के लिये इस संख्या से लगभग १० प्रतिशत कम अर्थात् २१६० कैलोरी प्रति दिन प्रति मनुष्य उचित होगा। ६ घंटे हलका शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्ति को कम से कम २६०० कैलोरी प्रति दिन की आवश्यकता

चित्र सं०—२
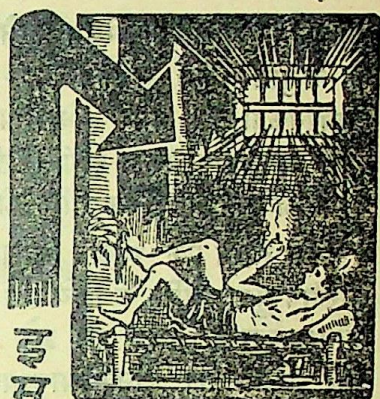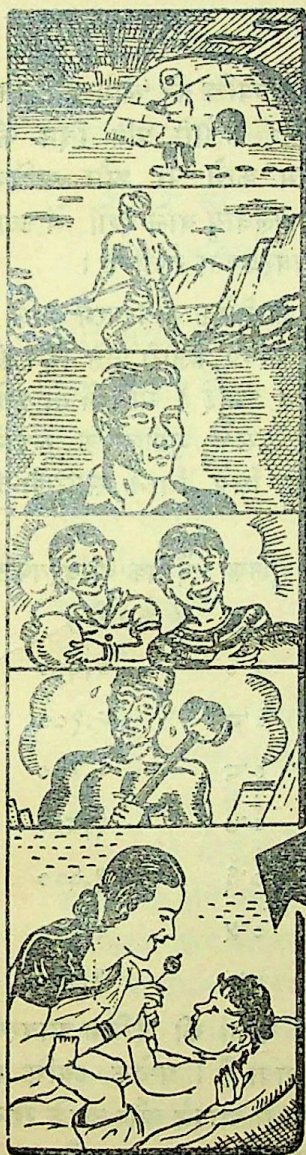
है। कठिन शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्ति को 'लीग कमीशन' के अनुसार कम से कम २८००-३००० कैलोरी प्रति दिन की आवश्यकता है। और अधिक परिश्रम करने पर और अधिक शक्ति की आवश्यकता होगी। ठंडे जलवायु वाले देशों में उष्ण प्रदेश की अपेक्षा अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है।

इस भाँति एक औसत (हलका शारीरिक कार्य करने वाले) भारतीय युवा व्यक्ति के लिये लगभग २६०० कैलोरी प्रति दिन की आवश्यकता है। यदि हम इसे एक (इकाई) मान लें तो बच्चों और स्त्रियों की दैनिक आवश्यकता इसके गुणक के रूप में निकाली जा सकती है। सुविधा के लिये निम्न सारिणी दी जाती है:—

	गुणक	दैनिक आवश्यकता (कैलोरी)
युवा पुरुष (१४ वर्ष से ऊपर)	१·०	२,६००
युवा स्त्री (१४ वर्ष से ऊपर)	०·८	२,१००
बच्चा १२—१३ वर्ष	०·८	२,१००
,, १०—११ वर्ष	०·७	१,८००
,, ८— ९ वर्ष	०·६	१,६००
,, ६— ७ वर्ष	०·५	१,३००
,, ४— ५ वर्ष	०·४	१,०००

उपर्युक्त सारिणी में विभिन्न आयु वालों की दैनिक आवश्यकता का एक अनुमान मात्र दिया गया है। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक अवस्था, उसकी जीवन सम्बन्धी आदतें और उसके रहन-सहन के अनुसार इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

गर्भवती स्त्री एवं धात्री माताओं की दैनिक आवश्यकता अन्य

स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होती है। 'लीग कमीशन' के अनुसार इनकी शक्ति सम्बन्धी आवश्यकतायें निम्न हैं।

गर्भवती स्त्री	२४०० कै० प्रति दिन
धात्री (अलवाँती)	३००० कै० प्रति दिन

छोटे बच्चों की दैनिक आवश्यकता

प्रथम सप्ताह में	२००	कैलोरी	प्रति दिन
पहला महीना	२४०	"	"
दूसरा महीना	४००	"	"
तीसरा महीना	४५०	"	"
पांचवाँ महीना	६००	"	"
आठवां महीना	७००	"	"
बारहवां महीना	८००	"	"

अब हम यह जान गये है कि विभिन्न आयु एवं अवस्था के अनुसार कितनी शक्ति की आवश्यकता है। यह सब शक्ति भोजन से प्राप्त होती है।

(४) **भोजन के अन्य कार्य**—शरीर की वृद्धि, क्षत-विक्षत तंतुओं की पूर्ति एवं शक्ति उत्पादन की अपेक्षा कुछ अन्य कार्य भी हैं जिनके लिये भोजन आवश्यक है। भोजन के कुछ मूल अवयव जैसे विटामिन आदि न तो शक्ति ही उत्पन्न करते हैं और न तंतुओं की वृद्धि। परन्तु फिर भी वे हमारे शरीर एवं जीवन के लिये अत्यावश्यक हैं। वे भोजन के उपर्युक्त कार्यों के ठीक ठीक सम्पादन और शरीर रक्षा के लिये नितान्त आवश्यक हैं। इनके विषय में इसके विशेष स्थल पर अधिक विस्तार पूर्ण विवेचना की जायेगी।

भोजन के कार्य

इस भांति संक्षेप में भोजन हमारे शरीर के निम्न कार्यों के लिये आवश्यक है :—

क { १. शरीर के अवयवों की वृद्धि
  २. क्षत विक्षत तंतुओं की पूर्ति

ख { ३. शारीरिक कार्यों एवं परिश्रम के लिये शक्ति उत्पादन
  ४. शरीर का तापमान स्थिर रखने के लिये उष्णता

ग { ५. उपर्युक्त कार्यों, शरीर-वृद्धि एवं अन्य कार्यों का ठीक ठीक सम्पादन।

परिभाषा

अब हम भोजन शब्द की परिभाषा अधिक आसानी से समझ सकते हैं:—

इस भांति 'भोजन' वह पदार्थ है जो कि आंतों में पचने के बाद शरीर में पहुँच कर उपर्युक्त कार्यों में से किसी एक अथवा अधिक कार्यों का सम्पादन करे।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं—इस परिभाषा में थोड़े से संशोधन की आवश्यकता है।

अल्कोहल शरीर में पहुँचने के बाद शक्ति उत्पन्न करता है (६ कैलोरी प्रति ग्राम) परन्तु यह पदार्थ भोजन शब्द के अन्तर्गत कदापि नहीं रक्खा जा सकता। उपर्युक्त परिभाषाके साथ साथ इतना और आवश्यक है कि वह पदार्थ स्वयं अथवा उसके पक्वीकरण (पचने) के बाद उत्पन्न हुये पदार्थ किसी भी प्रकार के हानिकर प्रभावों से सर्वथा रहित होने चाहिये। केवल तभी वह पदार्थ भोजन की श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

भोजन की कमी

अब हम भोजन के कार्यों से पूर्णतया परिचित हो गये हैं और यह भी जान गये हैं कि हमारे शरीर के लिये भोजन क्यों आवश्यक है। यदि हमें उचित मात्रा में भोजन न मिले तो हमारे शरीर को पूरे परिमाण में शक्ति प्राप्त न होगी। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि शारीरिक कार्यों के लिये शक्ति आवश्यक है इसलिये भोजन से पूर्ण शक्ति प्राप्त न होने पर उसके लिये हमारे शरीर के संचित पदार्थ इस्तेमाल होने लगते हैं और शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होता जाता है। उसका भार भी कम हो जाता है। साथ ही साथ क्षत विक्षत तन्तुओं की पूर्ति भी नहीं हो पाती। इस भाँति यह स्पष्ट है कि भोजन हमारे शरीर के लिये नितान्त आवश्यक है।

अब अगले प्रकरण में हम भोजन के मूल अवयवों और उनके मुख्य कार्यों की विवेचना करेंगे।

भोजन के मूल अवयव

भोजन के प्रकार

पिछले प्रकरण में भोजन की आवश्यकता और उसके कार्यों पर विस्तृत प्रकाश डाला जा चुका है। अब हमें यह देखना है कि कौन सा भोज्य पदार्थ किस कार्य को अधिक सुगमता एवं सफलता से कर सकता है। भोजन के कार्यों को ध्यान में रखते हुए हम भोज्य पदार्थों को निम्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :—

(१) वृद्धिकारक भोज्य पदार्थ—शरीर के तन्तुओं की वृद्धि और उनकी क्षति-पूर्ति के लिये आवश्यक हैं। इनके मूल अवयव निम्न हैं :—

—प्रोटीन
—खनिज पदार्थ

(२) शक्तिउत्पादक भोज्य-पदार्थ

—कर्बोज

—वसा (चर्बी)

ये पदार्थ शारीरिक परिश्रम के लिये आवश्यक शक्ति एवं शरीर का तापमान स्थिर रखने के लिये आवश्यक उष्णता उत्पन्न करते हैं।

(२) रक्षात्मक भोज्य-पदार्थ—जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि भोजन के कुछ अंग न तो हमें शक्ति ही प्रदान करते हैं और न हमारे तन्तुओं की क्षति-पूर्ति ही, फिर भी वे हमारे शरीर और जीवन के लिये नितान्त आवश्यक हैं। सो किस भांति ? इसका उत्तर और इस विषय का विशेष विकास इनके विशेष स्थल पर किया जायेगा। यहाँ यह बता देना ही काफी है कि इन पदार्थों का हमारे भोजन में होना आवश्यक है। इस श्रेणी के भोज्य पदार्थों के मुख्य मूल अवयव निम्न हैं।

—विटामिन
—खनिज लवण
—जल

अब हम भोजन के इन मुख्य मूल अवयवों के विषय में विस्तृत विवेचन करेंगे। इनके रासायनिक संगठन, कार्य, दैनिक आवश्यकता एवं इनकी उपलब्धि के साधन सम्बन्धी विषयों का ज्ञान हमारे लिये आवश्यक है। बिना इस ज्ञान के 'समतुल आहार' सम्बन्धी सभी प्रयत्न निष्फल रहेंगे।

समतुल आहार

यहाँ हमने 'समतुल आहार' शब्द का प्रयोग पहली बार किया है। सम्भव है बहुत से पाठकगण इस शब्द में निहित हमारे अभिप्राय को न समझे हों। इसलिये भोजन के मूल अवयवों की विवेचना प्रारम्भ करने से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह स्पष्ट कर दें कि 'समतुल आहार' क्या है ?

समतुल आहार का मतलब यह नहीं कि हर प्रकार का भोजन प्रति दिन तोल तोल कर खाया जाये। ऐसा करना सम्भव नहीं। इसका अभिप्राय केवल यही है कि जो भोजन हम रोज़ करते

हैं उसमें भोजन के वे सब मूल अवयव लगभग उसी अनुपात में रहें, जिनकी और जितने की हमारे शरीर को आवश्यकता है। भोजन का प्रत्येक अंश—प्रोटीन, कर्बोज, वसा, विटामिन एवं जल शरीर के लिये आवश्यक है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इनमें से हर एक का परिमाण लगभग उतना ही हो, जितने की हमारे शरीर को जरूरत है। इसी को 'समतुल आहार' कहते हैं।

इससे पहले कि हम उपर्युक्त ध्यान रख सकें—जैसा कि पहले कहा जा चुका है—यह आवश्यक हो जाता है कि भोजन के इन मूल अवयवों सम्बन्धी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली जाये। इस लिये अब हम इनमें से प्रत्येक मूल अवयव के विषय में आवश्यक विवेचना करेंगे।

प्रोटीन

प्रोटीन हमारे भोजन का वृद्धि-कारक अंश है। यह शरीर की वृद्धि और क्षत विक्षत तंतुओं की पूर्ति के लिये आवश्यक है।

रासायनिक उपादान—प्रोटीन रासायनिक संयोगिक पदार्थ है। इसमें उपस्थित तत्वों में नत्रजन मुख्य है जो कि हमारे शरीर की वृद्धि एवं क्षति-पूर्ति के लिये आवश्यक है। इसके अलावा प्रोटीन में—कार्बन, उद्जन, ओषजन, गन्धक एवं स्फुर भी होते हैं। कुछ प्रोटीनों में लोहा, तांबा, आयोडीन और जिन्क आदि भी होता है।

प्रोटीन का औसत रासायनिक संगठन लगभग इस भाँति है—

कार्बन—	५०—५५%
उद्जन—	६—७.३%
ओषजन—	२१—२३%

नत्रजन—	१५—१८%	
गंधक—	०.३—२.५%	(जब उपस्थित
स्फुर—	०.४—०.८%	हों)

अन्य तात्विक पदार्थ जो कि प्रोटीनों में पाये जा सकते हैं केवल कुछ अंशों में ही होते हैं।

शरीर का एक भी कोष ऐसा नहीं है जिसमें प्रोटीन न हो। यह उनके जीवन रस में रहता है और उसका अत्यावश्यक अंश है। यहाँ प्रोटीन में सदैव रासायनिक रूपांतर होता रहता है और ओषजनीकरण भी निरन्तर होता रहता है। जिसके परिणाम स्वरूप यूरिया, यूरिक-अम्ल, एमोनिया एवं जल आदि पदार्थ बनते रहते हैं। साथ ही साथ उष्णता के रूप में थोड़ी सी शक्ति भी उत्पन्न होती है (४.१ कैलोरी प्रति ग्राम)। इस भाँति हमारे शरीर में प्रोटीन की निरंतर हानि हुआ करती है जिसकी पूर्ति हम भोजन से करते हैं।

प्रोटीन की आवश्यकता—प्रोटीन के कार्यों के विषय में तो हम जान ही गये हैं। वृद्धि और तंतुओं की क्षति पूर्ति ही प्रोटीन का मुख्य कार्य है। अब हमें यह देखना है कि किसी व्यक्ति की प्रोटीन सम्बन्धी लगभग दैनिक आवश्यकता क्या है ? प्रोटीन के कार्यों को ध्यान में रखते हुये यह स्पष्ट है कि वृद्धि के समय (जैसे बालकों में); जब शरीर का अधिक ह्रास हुआ हो (किसी लम्बी अवधि के रोग के उपरान्त) अथवा जब शरीर को कार्य विशेष के लिये अधिक प्रोटीन की आवश्यकता हो (जैसे कि गर्भवती स्त्री अथवा दूध पिलाने वाली स्त्री को) उन अवस्थाओं में शरीर को साधारण अवस्था की अपेक्षा अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। साधारण एवं उपर्युक्त विभिन्न अवस्थाओं

में जितनी प्रोटीन की आवश्यकता है—उसका लगभग अनुमान निम्न तालिका से हो जायेगा।

आयु	ग्राम प्रति दिन	
पुरुष १८—६० वर्ष	·६५	१ ग्राम= लगभग १ माशा
स्त्री १८—६० ,, (साधारण अवस्था में)	५५	
लड़का १०—१७ ,,	८०	
लड़की १०—१७	७०	
बच्चा ६ — ६ ,,	६०	
,, २ —६ तक	४०—५०	

बालकों, गर्भवती स्त्रियों एवं दूध पिलाने वाली माताओं को साधारण अवस्था की अपेक्षा अधिक प्रोटीन की आवश्यकता है।

इतना जानने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि हमें यह मालूम हो कि किन पदार्थों के प्रयोग से प्रोटीन प्राप्त हो सकती है—

यों तो सभी भोज्य पदार्थों में प्रोटीन कुछ न कुछ अंशों में विद्यमान रहती है, किन्तु इसकी मात्रा किन्ही में बहुत कम होती है और किन्ही में अधिक। दूध, अंडा, मांस, मछली आदि (पशु जन्य भोज्य पदार्थ) में यह बहुत अधिक मात्रा में होती है। चावल, गेहूँ, जौ, बाजरा आदि अनाजों में इसका परिमाण कम होता है। अनाजों में सब से कम प्रोटीन चावल में होती है। अनाजों में सब से ऊपर की परत, अर्थात चोकर में प्रोटीन अधिक मात्रा में रहती है। अन्दर के भाग में तो अधिकतर कर्बोज होता है। मशीन से साफ किये चावल, और मैदा में प्रोटीन तो कम होती ही है, साथ ही अन्य आवश्यक एवं लाभदायक पदार्थ जैसे विटामिन, खनिज लवण आदि भी कम हो जाते हैं।
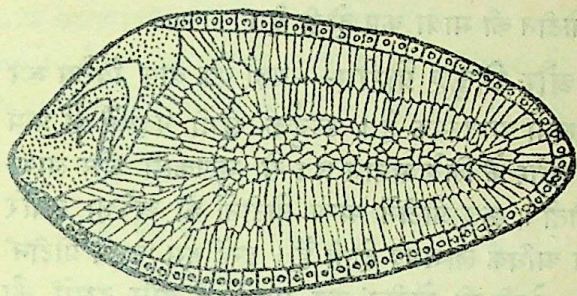
चित्र सं०—३
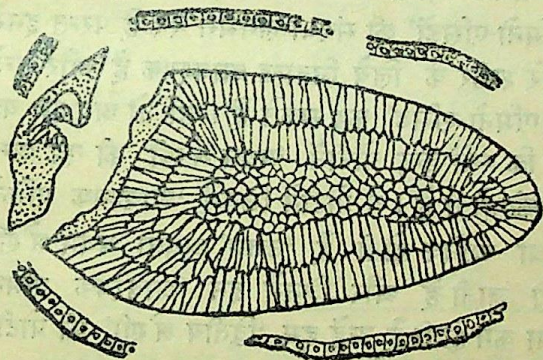
[मैदा पिसने पर गेहूँ का बाहर का छिलका चोकर के रूप में अलग हो जाता है, यह प्रोटीन, खनिज तथा विटामिन में विशेष धनी होता है।]

दालों में प्रोटीन अधिक मात्रा में होता है। पत्तेदार तरकारियों एवं फलों में प्रोटीन की मात्रा कम होती है।

उत्तम और निकृष्ट प्रोटीन—यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है। उपर्युक्त सभी पदार्थों से प्राप्त प्रोटीन हमारे शरीर के लिये समान रूप से गुणकारी और लाभदायक नहीं होती। कुछ प्रोटीनें अन्य प्रोटीनों की अपेक्षा हमारे शरीर के लिये अधिक लाभप्रद होती हैं। इन्हें हम 'उत्तम प्रोटीन' अथवा 'प्रथम श्रेणी की प्रोटीन' कह सकते हैं और दूसरों को 'निकृष्ट प्रोटीन' अथवा 'द्वितीय श्रेणी की प्रोटीन' कहते हैं।

जब हम प्रोटीन खाते हैं तो उसका आत्मीकरण होने से पूर्व पाचन-संस्थान में पक्वीकरण होने के कारण प्रोटीन के जटिल अणु सरल अणुओं में परिवर्तित हो जाते हैं और अन्ततः वे 'एमिनो-एसिड' नामक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। अब तक ज्ञात समस्त 'एमिनो-एसिडों' की संख्या लगभग २२ है परन्तु इनमें से १० तो हमारे शरीर के लिये नितान्त आवश्यक हैं और इन्हें हम 'आवश्यक एमिनो-एसिड' कह सकते हैं। हाँ तो अब हम यह जान सकते हैं कि क्यों कुछ प्रोटीनें 'प्रथम श्रेणी' की एवं अन्य 'द्वितीय श्रेणी' की होती हैं। वे प्रोटीनें जिनमें 'आवश्यक एमिनो एसिड' की मात्रा अधिक होती है 'उत्तम' अथवा 'प्रथम श्रेणी' की प्रोटीन कही जाती हैं और जिनमें इन 'आवश्यक एमिनो एसिड' की मात्रा कम होती है उन्हें हम 'द्वितीय श्रेणी' की प्रोटीन अथवा 'निकृष्ट प्रोटीन' कहते हैं।

इसकी अपेक्षा दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि हर प्रकार की प्रोटीनें उतनी ही सुगमता से हमारे शरीर के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकतीं। कुछ प्रोटीनें अन्य प्रोटीनों की अपेक्षा अधिक सुपच होती हैं और सुगमता से शरीर के काम आ

सकती हैं। हमारे भोजन में उपस्थित प्रोटीन के जितने अधिक भाग का आत्मीकरण होगा हम उस प्रोटीन को उतना ही अच्छा कहेंगे। निम्न सारिणी से स्पष्ट है कि प्राणिवर्ग से प्राप्त प्रोटीन अन्नवर्ग की प्रोटीनों की अपेक्षा अधिक उत्तम होती है।

भोज्य पदार्थ	प्रोटीन के आत्मीकरण का गुणक	श्रेणी
मांस	लगभग सब	प्रथम श्रेणी
दुग्ध	लगभग सब	
	८८-१०० प्र० शत	
आटा	८० ८८ प्र० शत	द्वितीय श्रेणी
अरहर की दाल	८२-८६ प्र० शत	
मूंग की दाल	८५·६ प्र० शत	
चने की दाल	६४·६ प्र० शत	
उड़द की दाल	६६·२ प्र० शत	
जौ	५७·६ प्र० शत	
ज्वार	५३·६ प्र० शत	
बाजरा	४६·४ प्र० शत	
शाक	७६·८ प्र० शत	

तालिका से स्पष्ट है कि दालों में मूंग की दाल से सबसे अधिक और चने की दाल से सबसे कम प्रोटीन का आत्मीकरण होता है।

इस भाँति प्रोटीनों में उपस्थित 'आवश्यक एमिनो-एसिड' की मात्रा एवं उसके आत्मीकरण के गुणक को ध्यान में रखते

हुये हम समस्त प्रोटीनों को 'प्रथम' एवं 'द्वितीय श्रेणी' में विभाजित कर सकते हैं। पशुजन्य भोज्य पदार्थों जैसे दूध, मांस, अंडा, मछली आदि में उपस्थित प्रोटीन 'प्रथम श्रेणी' की होती है एवं वनस्पतिजन्य भोज्य पदार्थों की प्रोटीन 'द्वितीय श्रेणी' की।

हमारे दैनिक भोजन में उपस्थित प्रोटीन की मात्रा का कम से कम १/३ भाग 'उत्तम श्रेणी' की प्रोटीन का होना चाहिये जो कि दूध, माँस, अंडे, गेहूँ आदि से प्राप्त हो सकता है। बालकों, गर्भवती स्त्रियों एवं दूध पिलाने वाली माताओं के भोजन में भी 'प्रथम श्रेणी' प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिये।

प्रोटीन की कमी—प्रोटीन की मात्रा आवश्यकता से कम होने पर निर्बलता, आलस्य, शिथिलता एवं थकावट का अनुभव होता है, शरीर की वृद्धि रुक जाती है एवं क्षत-विक्षत तंतुओं की पूर्ति ठीक से नहीं होने पाती। इसके अतिरिक्त यकृत आदि अन्य अंगों पर अधिक गंभीर प्रभाव होते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन इस पुस्तक के कलेवर से परे का विषय है।

अधिक प्रोटीन—प्रोटीन की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने पर यकृत एवं गुर्दों पर अधिक परिश्रम पड़ता है। इसीलिये गुर्दों के रोगियों को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनके भोजन में प्रोटीन का अंश आवश्यकता से अधिक न होने पाये।

वसा (चर्बी)

रासायनिक उपादान—ये पदार्थ कार्बन, उद्जन एवं ओषजन के रासायनिक संयोग से बनते हैं। यों तो शरीर के प्रत्येक कोष में चर्बी होती है परन्तु वसामय सौत्रिक तंतु में बहुतायत से जमा रहती है।

चर्बी, घी और तेल को सामूहिक रूप से वसा कहते हैं। इनके ओषजनीकरण से शक्ति उत्पन्न होती है। वसा, कर्बोज से दूनी शक्ति उत्पन्न करती है। इसीलिये शारीरिक परिश्रम करने वालों के लिये यह बहुत आवश्यक है। प्रति ग्राम वसा से लगभग ६ कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है। वसा घी, दूध, मक्खन, चर्बी एवं तेलों में बहुतायत से होती है।

आवश्यकता—वसा साधारणतः भोजन में अवश्य होनी चाहिये, किन्तु कितनी मात्रा में हो इसके विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। प्रौढ़ मनुष्य के भोजन में प्रतिदिन लगभग ६५ ग्राम (लगभग १ छटांक) वसा अवश्य होनी चाहिये। अधिक शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों को एवं ठंडे देश-वासियों को अधिक वसा की आवश्यकता होती है। भारत के दरिद्र निवासियों के भोजन में वसा की प्रायः कमी रहती है।

शक्ति उत्पादन के अलावा और भी कई बातों में वसा शरीर के लिये लाभदायक है। जिस भोजन में पशु-जन्य वसा नहीं होती, उसमें बहुत से मुख्य विटामिनों की भी कमी रहती है। विटामिनों का विस्तृत वर्णन आगे किया जावेगा। पशुजन्य वसा (जैसे मक्खन और घी) में विटामिन 'ए' रहता है। किन्तु वनस्पति वसा एवं तैलों में यह विटामिन नहीं होता। जिस घी में वनस्पति तैल मिला रहता है उसमें विटामिन 'ए' हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। जो वसा, भोजन के साथ घी, तेल इत्यादि के रूप में खाई जाती है, उसको छोड़कर निम्न पदार्थों में भी वसा की पर्याप्त मात्रा रहती है—बादाम, अखरोट, पिस्ता आदि मेवे, नारियल, सोयाबीन, मूँगफली और तिल।

कर्बोज

रासायनिक उपादान—कर्बोज में भी वही तात्विक

पदार्थ होते हैं जो कि वसा में होते हैं परन्तु उनका पारस्परिक अनुपात भिन्न होता है। उदजन एवं ओषजन उसी अनुपात में होते हैं जिसमें कि वे जल में होते हैं।

आवश्यकता—प्रधानतः कर्बोज ही शरीर को शक्ति देते हैं। अनाजों तथा उन तरकारियों में जिनकी जड़ खाने के लिये प्रयोग की जाती है—जैसे आलू या शकरकन्द आदि, प्रधानतः कर्बोज ही रहता है। चावल में ये बहुत अधिक मात्रा में होता है। चीनी तो शत प्रतिशत ही कर्बोज है।

कर्बोज पदार्थों की उपस्थिति भोजन में बहुत आवश्यक है। किन्तु जब भोजन में इनकी मात्रा अधिक हो जाती है—जैसे प्रायः भारतवासियों के भोजन में होता है, तो वे हानिकारक भी हो जाते हैं। भोजन में पहले प्रोटीन, वसा, विटामिन एवं खनिज लवणों की आवश्यकतानुसार पदार्थ चुनने चाहिये। तदुपरान्त कर्बोज की पूर्ति के लिये वे पदार्थ चुने जा सकते हैं जिसमें कर्बोज अधिक मात्रा में हों। कारण यह है कि कर्बोज की कमी आसानी से पूरी की जा सकती है, कठिनाई भोजन के अन्य अवयवों के लिये पड़ती है। कर्बोज की मात्रा शारीरिक परिश्रम के अनुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है।

ये तो हुये हमारे भोजन के मूल अवयव—प्रोटीन, कर्बोज और वसा। पहला (प्रोटीन) तो जैसा कि हम कह चुके हैं शारीरिक तंतुओं की वृद्धि, पूर्ति एवं निर्माण के लिये आवश्यक है और अन्तिम दो (वसा और कर्बोज) हमें शक्ति प्रदान करते हैं। प्रोटीन से भी कर्बोज के बराबर ही शक्ति उत्पन्न होती है। परन्तु शारीरिक कोष उष्णता की उत्पत्ति के लिये प्रोटीन को इतना काम में नहीं लाते जितना कि अन्तिम दो को। वे लोग जो शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं उन्हें मानसिक कार्य करने वालों की अपेक्षा वसा और

कर्बोज की अधिक आवश्यकता है। प्रोटीन का और अधिक मात्रा में होना आवश्यक नहीं। हमारा शरीर इन्जन की भांति है और एक स्वस्थ इन्जन को अधिक कार्य करने के लिये केवल अधिक पेट्रोल अथवा कोयले की ही आवश्यकता होती है न कि और अधिक पुर्जों की। हमारे शरीर के लिये पेट्रोल और कोयला, वसा और कर्बोज हैं। प्रोटीन तो हमारे शरीर के पुर्जे ठीक करता और बनाता है।

हमारे भोजन में उपर्युक्त मूल अवयवों के साथ-साथ, जल, लवण, खनिज पदार्थ एवं विटामिनों का होना भी आवश्यक है।

ये पदार्थ शक्ति उत्पन्न नहीं करते ताहम् हमारे जीवन के लिये नितांत आवश्यक हैं। इनकी आवश्यकता, इनके कार्यों एवं उपलब्धि आदि का सविस्तार वर्णन आगे के प्रकरणों में किया जावेगा।

खनिज और हमारा स्वास्थ्य

आवश्यकता और कार्य

खनिज और लवण खाद्य सामग्री के आवश्यक अंश हैं। प्रोटीन के अलावा खनिज-पदार्थ और जल भी हमारे शरीर में नये कोषों के निर्माण के लिये आवश्यक हैं। इसकी अपेक्षा और भी बहुत से कार्य हैं जिनके लिये विभिन्न खनिज लवण आवश्यक हैं।

हमारे शरीर को लगभग १/२५ वां भाग खनिज पदार्थों से निर्मित है। दाँतों और हड्डियों में ये पदार्थ सर्वाधिक मात्रा में होते हैं। मांस और रक्त में उपस्थित खनिज लवण अपने उचित अनुपात से हमारे शरीर में रक्त की प्रतिक्रिया ठीक रखते हैं—उसे न तो अम्लीय होने देते हैं और न अधिक क्षारीय। हमारा रक्त स्वभावतः कुछ क्षार गुण सम्पन्न होता है। शरीर में अम्लीय प्रतिक्रिया का उत्कर्ष होने से स्वास्थ्य की हानि होती है।

जितने मौलिक हमारे शरीर में पाये जाते हैं उनमें से कुछ अम्लोत्पादक हैं और कुछ क्षारोत्पादक। प्रधान अम्लोत्पादक मौलिक ये हैं :—स्फुर, गंधक एवं क्लोरीन। प्रधान क्षारोत्पादक मौलिक हैं :—कैलशियम, मैगनीशियम, सोडियम, एवं पोटाशियम और लौह।

जब दोनों प्रकार के मौलिक शरीर में उपयुक्त परिमाण में रहते हैं तो रक्त, तंतुरस एवं तंतुओं की प्रतिक्रिया ठीक रहती है, अर्थात् न अधिक क्षारीय और न अधिक अम्ल। जब एक ही प्रकार का असन्तुलित भोजन खाते रहने से प्रतिक्रिया ठीक नहीं रहती अधिक क्षारीय या अम्ल हो जाती है—तब स्वास्थ्य की हानि होने लगती है। दूध को छोड़कर कोई खाद्य पदार्थ ऐसा नहीं हैं जिसमें सब मौलिक सम परिमाण में हों, दूध में भी लोहा कम परिमाण में होता है। कुछ खाद्य पदार्थों में अम्लोत्पादक मौलिक अधिक होते हैं और क्षारोत्पादक कम। अम्लोत्पादक खाद्य पदार्थ ये हैं ; मांस, अंडा, दाल, मेवे, अखरोट आदि, भांति-भांति के अनाज जैसे, गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, और जौ।

कुछ खाद्य पदार्थों में क्षारोत्पादक मौलिक अधिक होते हैं और अम्लोत्पादक कम। ये क्षारोत्पादक पदार्थ कहलाते हैं। प्रायः मधुर एवं लवण रस पदार्थ ही अधिक क्षार उत्पन्न करते हैं। जैसे, हरे पत्ते वाले साग, करमकल्ला, पालक, गोभी, आलू, शकर कंद, मूली, फल जैसे—नारंगी, नीबू, सेब एवं केला आदि।

अतएव स्मरण रखना चाहिये कि जो लोग मांस, मछली, अण्डा इत्यादि आमिष जातीय द्रव्य और दाल, भात, रोटी खाने वाले हैं उन्हें अपने भोजन में तरकारी, फल फूल, कन्द मूल, आदि अधिक मात्रा में खाना चाहिये। इससे रक्त में अम्लत्व की वृद्धि रुकेगी और स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

मांसपेशियों की उचित प्रतिक्रियाशीलता के लिये भी खनिज पदार्थों का होना आवश्यक है। शरीर के तंतुओं में जल उचित मात्रा में रखने के लिये भी खनिज पदार्थ ही उत्तरदायी हैं। गुर्दों के ठीक ठीक कार्य करने के लिये एवं शरीर से मल निष्कासन होने के लिये भी खनिज लवणों की उपस्थिति नितान्त आवश्यक है। पाचकरसों के निर्माण के लिये भी लवण की उपस्थिति जरूरी है।

यदि हमारे भोजन से समस्त खनिज पदार्थ निकाल दिए जायें तो हमारे लिये जीवन उतना ही असम्भव हो जाये जितना कि जल अथवा भोजन के न पाने पर। जब तक ये सब खनिज हमारे दैनिक आहार में उपयुक्त परिमाण में न होंगे, स्वस्थ जीवन एवं सबल शरीर एक स्वप्न ही रहेगा।

हमारे शरीर में लगभग २० मौलिक अथवा तात्विक पदार्थ हैं और इन्हीं के पारस्परिक संयोग से विभिन्न लवण उपादानों का निर्माण होता है। इनमें से मुख्य हैं:—कैलशियम, पोटैशियम, सोडियम, लौह, मैगनीशयम, मैंगनीज, जिन्क, तांबा, लिथियम, बेरियम, स्फुर, गंधक, क्लोरीन, आयोडीन, सिलिकन एवं फ्लोरीन; इनमें से प्रथम दस तो क्षारोत्पादक हैं और अन्तिम छः अम्लोत्पादक।

क्षारोत्पादक मौलिकों में से-कैलशियम, पोटैशियम, सोडियम, लौह एवं मैगनीशियम प्रधान हैं और शरीर में अधिक परिमाण में उपस्थित होते हैं; शेष पाँच केवल कुछ अँशों में ही पाये जाते हैं। अम्लोत्पादक मौलिकों में से; स्फुर, गंधक एवं क्लोरीन मुख्य हैं। जब ये सब मौलिक उपयुक्त परिमाण में रहते हैं तभी शरीर की प्रतिक्रिया ठीक रहती है; न अधिक क्षारीय और न अम्लीय।

समतुल आहार में ये सभी मौलिक उचित मात्रा में होते हैं।

परन्तु ऐसा कोई भी खाद्य पदार्थ नहीं है जिसमें ये सब सम परिमाण में उपस्थित हों। केवल दूध ही एक ऐसा पदार्थ है जो इस दृष्टि से आदर्श कहा जा सकता है—परन्तु इसमें भी लोहे का अंश आवश्यकता से कम होता है।

इन सब खनिज पदार्थों में से कुछ तो, जैसेकि, सैन्धव (साधारण नमक) प्रकृति में इतनी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं कि शरीर में इनकी कमी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ खनिज लवण किन्हीं किन्हीं खाद्य पदार्थों में नहीं रहते और ऐसे खाद्य पदार्थों पर अवलंबित रहने वाले लोग इन आवश्यक लवण-उपादानों की कमी से उत्पन्न हुये रोगों से ग्रसित हो जाते हैं।

अब हम उपर्युक्त खनिजों के कार्य, इनकी कमी से उत्पन्न हुये दोष और उनकी उपलब्धि के साधनों का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे।

लोहा

कार्य—लोहा रक्तकणों में उपस्थित लाल पदार्थ 'हीमोग्लोबिन' के निर्माण के लिये आवश्यक है। 'हीमोग्लोबिन' शरीर के प्रत्येक तंतु में 'ऑक्सीजन' पहुँचाने का कार्य करता है। लोहे की कमी के फलस्वरूप रक्तकणों में 'हीमोग्लोबिन' की कमी हो जाती है और उनका आकार भी छोटा हो जाता है। शरीर रक्ताल्पता के लक्षणों से ग्रसित हो जाता है। ऐसी दशा में शरीर के अवयवों को 'ऑक्सीजन' आवश्यक मात्रा में नहीं पहुँचती। परिणामतः रोगी अपनी शक्ति खोई हुई सी महसूस करता है और सिर दर्द, धड़कन, मांसपेशियों की निर्बलता, सिर में चक्कर, कानों में सनसनाहट और स्फूर्ति की कमी का अनुभव करता है।

दैनिक आवश्यकता—एक मनुष्य को लगभग ११-१६

मिलीग्राम लोहे की प्रति-दिन आवश्यकता होती है। बालकों एवं स्त्रियों को प्रौढ़ मनुष्यों की अपेक्षा अधिक लोहे की आवश्यकता है। हमारे दैनिक भोजन में लगभग २० मिलीग्राम लोहा अवश्य होना चाहिए। यह न समझना चाहिये कि लोहे का चूर्ण खाने से लोहे की कमी पूरी हो जायेगी। ऐसा लोहा पचेगा ही नहीं। खाद्य पदार्थों में जो लोहा रहता है वह विभिन्न लवण-उपादानों के रूप में रहता है उनमें से कुछ के लोहे का आत्मीकरण तो आसानी से हो जाता है औरों का नहीं। अनाज, दाल और गोश्त में उपस्थित लोहा शरीर आसानी से पचा लेता है।

उपलब्धि—वसा, शकर, पॉलिशदार चावल और मैदे में लोहे का अंश लगभग नहीं के बराबर ही होता है। जिगर, गोश्त, अंडे, दाल, छिलकेदार अनाज, पालक एवं अन्य हरे शाक, सलाद, प्याज, मूली एवं शलजम की पत्तियाँ और टमाटर आदि में लोहा अधिक मात्रा में उपस्थित होता है।

भोजन में उपस्थित लोहे का सब अंश हज़म नहीं होता। लोहे की उपलब्धि का सबसे उत्तम साधन चोकर सहित आटे की रोटी, अंडे, आलू एवं हरे शाक-भाजी हैं। छीलने से आलुओं में उपस्थित लोहे का आधा भाग निकल जाता है। मैदे में, चोकर सहित आटे की अपेक्षा लोहे का केवल १/४ भाग ही होता है। मांस में भी लगभग आटे के बराबर ही लोहे का अंश होता है, परन्तु मांस में उपस्थित लोहे के अंश का केवल बहुत थोड़ा भाग ही हज़म होता है जब कि चोकर सहित आटे की रोटी में उपस्थित लोहे का ४.५ भाग काम में आ जाता है। शरीर में लोहे की मात्रा उपयुक्त परिमाण में पहुँचाने के लिये हमें चोकर सहित आटे की रोटी और हरे शाक-भाजियों का उपयोग करना चाहिये।

चित्र सं०—४ प्रधान खनिज और उनमें विशेष धनी पदार्थ

भोजन में उपस्थित लोहे का अंश हमारे शरीर में रक्त निर्माण के कार्य आ सके—इसके लिये आवश्यक है कि भोजन में विटामिन भी उचित परिमाण में उपस्थित हों और यकृत एवं चुल्लिका-ग्रंथि (थायरॉयड) ठीक रूप से अपना अपना कार्य कर रहे हों। अन्यथा भोजन में लोहा उपयुक्त परिमाण में रहने पर भी शरीर रक्ताल्पता के लक्षणों से पीड़ित हो सकता है।

कैलशियम एवं फ़ॉसफोरस

कार्य—ये दोनों खनिज भी हमारे शरीर के लिये बहुत आवश्यक हैं। इनके कार्य एक दूसरे से बहुत सम्बन्धित और प्रायः समान ही हैं। इसलिये यहाँ हम इन दोनों की विवेचना एक ही साथ करेंगे।

हड्डियों में उपस्थित मुख्य पदार्थ जिस पर शरीर के ढांचे की सम्पूर्ण शक्ति निर्भर है, एवं वह पदार्थ जो दांतों को मजबूत कर सख्त बनाता है, दोनों ही कैलशियम एवं स्फुर के संयोगिक हैं।

कैलशियम और भी बहुत से अन्य आवश्यक कार्यों के लिये जरूरी है—जैसेकि, रक्त का थक्के के रूप में जमना जो कि दुर्घटनाओं अथवा अन्य कारणों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए घावों से रक्त का बहना रोकता है। स्नायविक-संस्थान के ठीक कार्य सम्पादन के लिये भी कैलशियम आवश्यक है। स्फुर के संयोगिक भी रक्त एवं स्नायविक तन्तु के मुख्य भाग हैं।

आँतों से कैलशियम एवं फ़ॉसफोरस का हज़म होकर खून में मिलना निम्न बातों पर निर्भर करता है।

(१) भोजन में उपस्थित विटामिन 'डी' की मात्रा
(२) आंतों की प्रतिक्रिया
(३) आँतों की श्लैष्मिक कला की अवस्था

(४) आँतों में उपस्थित भोजन में वसा की मात्रा

(५) भोजन में उपस्थित कैलशियम एवं फ़ॉसफ़ोरस की मात्राओं का पारस्परिक अनुपात। ठीक अनुपात भिन्न-भिन्न आयु के अनुसार विभिन्न होता है। बच्चों के लिये फ़ॉसफ़ोरस से लगभग दोगुना कैलशियम होना चाहिये और युवा पुरुषों के लिये कैलशियम का परिमाण फ़ॉसफ़ोरस का केवल आधा अथवा दो तिहाई ही आवश्यक है। औरतों और बच्चों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक कैलशियम की आवश्यकता है।

भोजन में उपस्थित कैलशियम के हज़म होने के लिये यह आवश्यक है कि भोजन में विटामिन 'डी' उपयुक्त मात्रा में हो, आँतों में उपस्थित पदार्थों की प्रतिक्रिया अम्लीय हो, वसा की मात्रा कम हो तथा श्लैष्मिक कला स्वस्थ हो। विटामिन 'डी' की कमी, वसा की अधिकता, क्षारीय प्रतिक्रिया एवं श्लैष्मिक कला की अस्वस्थ दशा से कैलशियम के आत्मीकरण में व्याघात होता है।

आवश्यकता—जिस प्रकार बच्चों को बड़ों की अपेक्षा भोजन में प्रोटीन की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है, उसी प्रकार उनको कैलशियम तथा अन्य खनिज लवणों की आवश्यकता भी अधिक होती है। कैलशियम से हड्डी बनती है। चावल में कैलशियम बहुत थोड़ी मात्रा में रहता है। इसलिये जो चावल अधिक खाते हैं उनके भोजन में कैलशियम की कमी रहती है।

गर्भावस्था में तथा दूध पिलाने के दिनों में स्त्रियों को अधिक कैलशियम की आवश्यकता होती है। तीन महीने के स्वस्थ स्तन-पोषित बच्चे की हड्डियों में बहुत सा कैलशियम रहता है। यह सब कैलशियम बच्चा माँ के दूध और रक्त से ही प्राप्त करता है। यदि मां के भोजन में कैलशियम की मात्रा अधिक नहीं

रहती है तो बच्चा मां की हड्डियों का कैलशियम यथा संभव खींच लेता है। ऐसी अवस्था में मां कमज़ोर हो जाती है। गर्भावस्था तथा स्तन-पोषण के दिनों में मां के शरीर का बहुत अधिक कैलशियम निकलता रहता है, इसलिये इन दिनों मां को दूध ख़ूब पीना चाहिये।

एक आदमीको प्रतिदिन लगभग १ ग्राम कैलशियम की आवश्यकता होती है। बच्चों और स्त्रियों को अधिक।

उपलब्धि—दूध, पनीर, मेवे, मछली एवं हरे शाक भाजी कैलशियम की उपलब्धि के लिये उत्तम पदार्थ हैं। मांस में कैलशियम की मात्रा कम होती है। यहाँ यह जानना लाभदायक होगा कि दूध में उपस्थित कैलशियम का आत्मीकरण सब से अधिक सुगमता से हो जाता है। औरत के दूध में कैलशियम और स्फुर का अनुपात २:१ होता है, जब कि गाय के दूध में कैलशियम की मात्रा फ़ॉसफोरस से केवल कुछ ही अधिक होती है। परिणामतः मां के दूध से पले हुये बच्चों में साधारणतः कैलशियम की कमी की कोई भी संभावना नहीं रहती।

फ़ॉसफोरस के लिये पनीर, दूध, चोकर सहित आटे की रोटी, जई, जौ, अंडे, गोश्त, मछली, दाल तथा मेवे उत्तम पदार्थ हैं। पॉलिशदार चावल, मैदा, कंद—जैसे, आलू, शकरकंद आदि में फ़ॉसफोरस की मात्रा बहुत कम होती है।

तांबा

लोहे से 'हीमोग्लोबिन' (रक्त कणों में उपस्थित लाल पदार्थ) बनाने के लिये शरीर में तांबे की आवश्यकता पड़ती है। तांबे की दैनिक आवश्यकता लोहे की आवश्यकता का केवल पांचवाँ भाग है। उन सभी खाद्य पदार्थों में जिनमें लोहा उपस्थित

होता है, तांबा भी रहता है परन्तु लोहे से कम मात्रा में। इस भांति जिगर, दालें, चोकर सहित आटे की रोटी, जई, गोश्त और फल एवं मेवे तांबे की उपलब्धि के लिये उत्तम खाद्य पदार्थ हैं।

मैंगनीज़

मैंगनीज़ भी शरीर में लोहे से ही सम्बन्धित पाया जाता है। दोनों ही रक्त के लाल कणों में होते हैं और रक्त के मुख्य गुणों के लिये उत्तरदायी हैं। मैंगनीज़ शरीर में ओषजनीकरण क्रिया में विशेष कार्य करता है। मनुष्य के शरीर में यकृत में सब से अधिक मैंगनीज़ होता है। यकृत ही शरीर में उपस्थित लोहे का भी मुख्य कोष है।

मैंगनीज के संयोगिक, शरीर की त्वचा में कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न हुये विषों का प्रतिरोध करने की शक्ति प्रदान करते हैं। चूहों में मैंगनीज़ की अधिक कमी से बंध्यापन हो जाता है और उनकी मृत्यु संख्या भी बहुत अधिक बढ़ जाती है।

मैगनीशियम

हमारे तंतुओं में मैगनीशियम के कार्य लगभग कैलशियम से ही मिलते जुलते और उसी से संबन्धित होते हैं। ये दोनों खनिज शरीर में प्रायः साथ ही साथ पाये जाते हैं और एक दूसरे के पूरक का कार्य करते हैं। हड्डियों एवं दाँतों में कैलशियम फॉसफेट के साथ साथ मैगनीशियम फॉसफेट भी होता है और इसी की मात्रा पर उनकी शक्ति और कठोरता निर्भर करती है। मैगनीशियम का कुछ अंश शरीर की उन रासायनिक क्रियाओं के होते रहने के लिये भी आवश्यक है जिनके परिणाम स्वरूप हमारे शरीर की हड्डियाँ बनती हैं। मैगनीशियम की अनुपस्थिति में ये क्रियायें बिलकुल बन्द हो जाती हैं। मैगनी-

शियम माँस-पेशियों एवं स्नायु मंडल के कार्य सम्पादन के लिये भी आवश्यक है।

मैगनीशियम की दैनिक आवश्यकता का अभी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है। परन्तु हमारे शरीर में मैगनीशियम की कमी आम-तौर से अधिक देखने में नहीं आती। मेवे, दाल, जई, और चोकर सहित आटे की रोटी, मैगनीशियम की उपलब्धि के लिये उत्तम खाद्य पदार्थ हैं।

सैन्धव (साधारण नमक)

हमारे शरीर में अनेक आवश्यक कार्यों के लिये सैन्धव की उपस्थिति वांछनीय है। शरीर में रक्त को उपयुक्त दशा में रखने के लिये और शारीरिक तंतुओं में जल के उचित परिमाण के लिये सैन्धव आवश्यक है।

जिन लोगों के भोजन में वनस्पति-वर्ग के खाद्य पदार्थों का आधिक्य रहता है उन्हें अपने भोजन के साथ साधारण नमक का व्यवहार अवश्य करना चाहिये क्योंकि इन खाद्य पदार्थों में पोटैशियम अधिक मात्रा में रहता है और सोडियम कम।

वे लोग जिनका मुख्य भोजन केवल मांस है (जैसे टुन्ड्रा देशवासी 'एस्किमो') उन्हें ऊपर से अपने भोजन में नमक डालने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मांस में स्वयं सोडियम काफी मात्रा में होता है।

मिश्रित आहार खाने वालों को थोड़े से ही नमक की आवश्यकता होती है। बहुत से लोग बहुत अधिक नमक खाने के आदी हो जाते हैं। परन्तु इसकी अधिकता भी उतनी ही हानिकर है जितनी कि कमी। जब हमारे भोजन में हरे साग-सब्जियों की अधिकता हो तभी हमें थोड़े अधिक नमक की आवश्यकता होती है।

नमक की अधिकता गुर्दों एवं रक्तवाहिनी नलिकाओं पर हानिकर प्रभाव डालती है।

क्लोरीन

आमाशयिक-रस में उपस्थित 'हाइड्रोक्लोरिक एसिड' के निर्माण के लिये क्लोरीन आवश्यक है। साधारण नमक से हमें क्लोरीन प्राप्त होती है क्योंकि सैन्धव सैन्धकम एवं क्लोरीन का संयोगिक है।

केले, खजूर, सलाद, पालक, टमाटर, अनन्नास तथा हरी शाक भाजी आदि में क्लोरीन काफी मात्रा में होती है।

आयोडीन

आयोडीन शरीर में उपस्थित चुल्लिका ग्रंथि (थायरॉइड) के ठीक-ठीक कार्य संपादन के लिये आवश्यक है। 'थायरॉइड' हमारे शरीर के तमाम कार्यों एवं ओषजनीकरण क्रिया का नियंत्रण करता है। आयोडीन की अधिक कमी से शारीरिक एवं मानसिक कार्यों में व्याघात होता है। थोड़ी सी कमी से भी हमारी काम करने की शक्ति पर काफ़ी असर पड़ता है। जिस रस द्वारा चुल्लिका ग्रंथि अपने कार्यों को पूरा करती है उसके बनने के लिये आयोडीन तथा 'टायरोसीन' नामक 'एमिनोएसिड' की आवश्यकता होती है। जहाँ तक 'टायरोसीन' का प्रश्न है, यह हमारे भोजन में उपस्थित प्रोटीन से प्राप्त हो जाती है और इसकी कमी की कोई सम्भावना नहीं रहती। इसलिये 'थायरॉइड' के कार्यों में गड़बड़ी होने का मुख्य कारण आयोडीन की कमी ही होता है। आयोडीन की कमी से 'घेंघा' अथवा 'गलगंड' नामक रोग हो जाता है जिसमें गर्दन के सामने की ओर स्थित चुल्लिका ग्रंथि का आकार बहुत बढ़ जाता है। संयुक्त प्रांत के पूर्वी ज़िलों में यह रोग बहुत पाया जाता है।

अमेरिका तथा स्विट्जरलैंड में साधारण नमक के साथ पोटैशियम आयोडाइड मिला कर प्रयोग करने से इस रोग की बढ़ती रोक दी गई है।

आयोडीन की उपलब्धि के लिये सब से उत्तम खाद्य पदार्थ दूध, पनीर, मक्खन, हरे शाक-भाजी व मछलियाँ हैं। मछलियों के यकृत से निकाले गये तैलों (जैसे कि 'कॉड लिवर आयल') में भी आयोडीन की मात्रा बहुत होती है।

आयोडीन हमारे शरीर के लिये बहुत कम परिमाण (केवल कुछ अंशों) में ही आवश्यक है। अधिक मात्रा में हानिकर प्रभाव उत्पन्न करता है।

अन्य आवश्यक खनिज व लवण उपादान

'सिलिकन' नामक खनिज मनुष्य के विभिन्न अंगों जैसेकि, फेफड़े, बाल, त्वचा आदि में पाया जाता है। दाँतों का सबसे बाहरी चमकदार आवरण भी 'सिलिकन' एवं 'फ्लोरीन' का संयोगिक है। 'सिलिकन' फलों और शाक भाजियों के छिलकों में होता है। आलू और सेव के छिलके 'सिलिकन' एवं अन्यान्य खनिजों के लिये उत्तम वस्तु हैं। 'सिलिकन' की कमी से अभी तक कोई हानिकर प्रभाव निश्चयात्मक रूप से नहीं देखा गया है।

मनुष्य शरीर में उपर्युक्त की अपेक्षा और भी कई खनिज कुछ अंशों में पाये जाते हैं। कुछ प्रमाण पाये गये हैं कि ये कुछ जीवधारियों के लिये आवश्यक हैं। सम्भव है मनुष्य के लिये भी ये किसी न किसी रूप में जरूरी हों, यद्यपि इनके कार्यों आदि के विषय में अभी पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध नहीं हैं।

अन्त में एक बार फिर यह दोहरा देना आवश्यक है कि ये सब खनिज और लवण हमारे लिये विटामिन की ही भांति आवश्यक हैं। और इनकी समप्राप्ति के लिये हमें दूध, चोकर

सहित आटे की रोटी, हरे शाक-भाजी, फल और मेवे अधिक प्रयोग करने चाहिये।

यहाँ एक बात और जान लेना जरूरी है। ये सब खनिज तथा लवण उपादान जल में कुछ अंशों में घुलन शील होते हैं। इसलिये शाक-भाजी को काटने के बाद मल-मल कर बार-बार पानी में धोने से उनमें उपस्थित खनिज लवणों का अधिकांश उस धोवन के साथ ही निकल कर बह जाता है। इसलिये शाक भाजियों को छीलने और काटने के पहले ही खूब अच्छी तरह से साफ करके धो लेना चाहिये। काटने और छीलने के बाद धोने से खनिज लवणों का अधिक भाग व्यर्थ जाता है।

शाक-भाजी को उबाल कर वह पानी फेंक देने से भी हम उनमें उपस्थित इन मूल्यवान् पदार्थों के अधिक भाग से वंचित रह जाते हैं।

यदि भोजन में कुछ शाक-भाजी एवं फलों आदि का प्रयोग बिना पकाये ही किया जाये तो अत्युत्तम होगा।

विटामिन

भोजन के कार्यों के अनुसार उसके मूल अवयवों का वर्गीकरण करते समय हमने उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया था--१. वृद्धि कारक २. शक्ति उत्पादक एवं ३. रक्षात्मक। भोजन के रक्षात्मक अंग न तो हमें शक्ति प्रदान करते हैं और न हमारे तंतुओं की वृद्धि अथवा क्षति पूर्ति ही, ताहम् वे हमारे स्वस्थ जीवन के लिये नितान्त आवश्यक हैं। इस श्रेणी के भोज्य पदार्थों के मुख्य मूल अवयव विटामिन हैं।

चाहे अन्य सब दृष्टियों से हमारा भोजन कितना ही आदर्श क्यों न हो ताहम् उसमें विटामिनों का रहना आवश्यक है। विटामिन रहित भोजन निष्प्राण है। आख़िर ये विटामिन हैं क्या ?

विटामिन वनस्पति-जगत द्वारा बनाये जाते हैं। वनस्पति से ये जन्तु-जगत में पहुँचते हैं। यह निर्विवाद सिद्ध किया जा चुका है कि ये रासायनिक पदार्थ हमारे जीवन और स्वस्थ शरीर के लिये बहुत आवश्यक हैं। इनकी कमी से उत्पन्न हुये भीषण रोगों से भी अब हम अपरिचित नहीं रहे। कुछ लोगों का कहना तो यहाँ तक है और ठीक भी है कि आजकल आमतौर पर दूषित स्वास्थ्य एवं अपूर्ण वृद्धि तथा अधिकांश भीषण रोगों का कारण इन आवश्यक पदार्थों का हमारे भोजन में न होना ही है।

पुराने समय में जब लोग उपर्युक्त सत्यों एवं खोजों से परिचित न थे और उन दिनों समुद्री यात्रा के आज के से साधन न थे, मल्लाहों को महीनों बासी रक्खे हुये विटामिन रहित भोजन पर आश्रित रहना पड़ता था। उन दिनों बहुधा जहाजों के सारे के सारे यात्री इन भीषण रोगों के शिकार हो जाते थे।

विटामिन कई प्रकार के होते हैं। उनका नामकरण विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' और 'ई' आदि किया गया है। निम्न प्रकरणों में प्रत्येक का थोड़ा सा परिचय और संक्षिप्त विवेचन किया गया है।❀

विटामिन 'ए'

उपलब्धि—यह विटामिन पशुजन्य वसा, बिना मक्खन निकाला ताजा दूध, दही, मक्खन, शुद्ध घी, अंडे की जर्दी, बकरी, भेड़ आदि के यकृत तथा मछली आदि पदार्थ में बहुतायत से पाया जाता है। सब से अधिक मात्रा में यह विटामिन कुछ मछलियों के यकृत के तेल जैसे कि 'कॉड लिवर आयल' एवं 'हैलिबट लिवर आयल' आदि में होता है। 'कैरोटीन' नामक पदार्थ जो कुछ शाक भाजियों एवं फलों में रहता है—शरीर में पहुँच कर विटामिन 'ए' का कार्य करता है। पत्तेवाली शाक तरकारियाँ जैसे पालक, सलाद, करमकल्ला (पातगोभी), धनिया आदि की पत्तियों एवं पके हुये फल जैसे आम, पपीता, टमाटर आदि में 'कैरोटीन' बहुतायत से होता है। गाजर में भी यह बहुत रहता है। 'वस्तुतः' गाजर को अँग्रेजी में 'कैरट' कहते हैं और 'कैरोटीन' शब्द इसी से निकला है।

❀ इस विषय पर अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये लेखक की 'विटामिन और हीनता जनित रोग' पुस्तक पढ़िये।
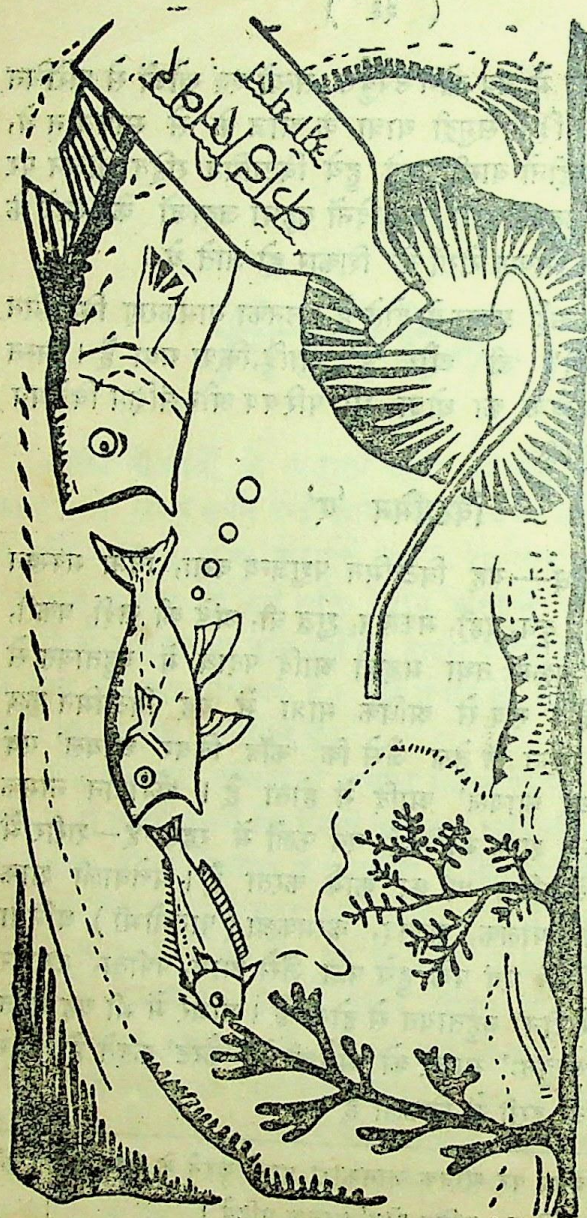
चित्र सं०—५
विटामिन 'ए' और 'डी' की उपलब्धि का उत्तम साधन
(एम० आर० मसानी की 'भोजन' नामक पुस्तक से)

मूंगफली और ताड़ के तैलों को छोड़ कर यह अन्य किसी वनस्पति तैलों में नहीं पाया जाता। कुछ अंशों में यह बादाम अखरोट और काजू सरीखे मेवों में भी होता है।

दूध और मक्खन, में विटामिन 'ए' की मात्रा जानवर के भोजन पर निर्भर है। जब गायें हरी घास—जिसमें 'कैरोटीन' बहुत अधिक होता है अधिक खाती हैं तो उनके दूध में विटामिन 'ए' की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। और जब वे सूखे भूसे पर आश्रित रहती हैं तो उनके दूध में विटामिन 'ए' की मात्रा बहुत कम हो जाती है।

शाक भाजियाँ जितनी ही हरी एवं ताजी होंगी उनमें उतना ही अधिक 'कैरोटीन' होगा।

स्थायित्व—किसी वस्तु को बहुत देर तक लगातार पकाने से उसमें उपस्थित विटामिन 'ए' नष्ट हो जाता है। यह बात घर में भोजन बनाने वाली स्त्रियों को सदैव ध्यान में रखनी चाहिये। ठंड का इस पर कोई असर नहीं होता। इस लिये अच्छे दूध से बनी हुई 'आइस क्रीम' में विटामिन 'ए' मौजूद रहता है।

कार्य तथा हीनता जनित दोष—विटामिन 'ए' हमारे शरीर की ठीक वृद्धि के लिये आवश्यक है। संक्रामक रोगों से बचने की शक्ति प्रदान करता है। भोजन में इसकी कमी होने से हमारा आहार हमें पूर्ण शक्ति प्रदान नहीं करता। आँखें कमज़ोर होकर रतौंधी एवं आँखों की अन्य बीमारियों से ग्रसित हो जाती हैं। संक्रामक रोगों को रोकने और उनका सामना करने की शक्ति कम हो जाती है और इस भांति शरीर संक्रामक रोगों के हमलों के लिये अधिक उपयुक्त हो जाता है।

इस विटामिन की कमी हमारे शरीर में क्षय रोग एवं फेफड़ों के अन्य रोगों के विकास में सहायक होती है। इसलिये 'कॉड लिवर आयल' जो कि इस विटामिन में विशेष धनी होता है, इन रोगों के लिये इतना प्रचलित एवं ख्यातिप्राप्त है। अभी हाल ही में मालूम किया गया है कि विटामिन 'ए' की कमी पथरी रोग के लिये भी उत्तरदायी है।

भोजन के अन्य मूल अवयवों की भाँति विटामिन 'ए' भी स्त्रियां एवं बच्चों के भोजन में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में होना चाहिये।

भोजन में विटामिन 'ए' की पर्याप्त मात्रा पाने के लिये हमें अपने आहार में दूध, मक्खन, अंडे, मछली, और हरे शाक भाजियों एवं फलों को विशेष स्थान देना चाहिये।

विटामिन 'बी'

विटामिन 'बी' बिना छिले अनाजों, दालों, अंडे, फल, तरकारियां, यकृत तथा माँस पेशियों और दूध में पाया जाता है। विटामिन बी के दो मुख्य भेद माने जाते हैं, एक तो विटामिन 'बी$_1$' और दूसरा विटामिन 'बी$_2$'। दोनों के गुणों में अन्तर है।

विटामिन 'बी$_1$'—मशीन से साफ़ किये हुये चावल में विटामिन 'बी$_1$' की कमी हो जाती है और इसी कमी के कारण 'बरी-बरी' रोग हो जाता है। भारतवर्ष के उन प्रान्तों में जहाँ चावल अधिक खाया जाता है 'बेरी-बेरी' रोग मिल के साफ किये हुये चावल खाने के कारण होता है। पुराने ढंग से ढेकी में कूट कर धान की भूसी छुड़ाने पर चावल में यह विटामिन रह जाता है आर इसीलिये ऐसा चावल मिल के पालिश किये हुये चावल से अधिक उपयोगी होता है।
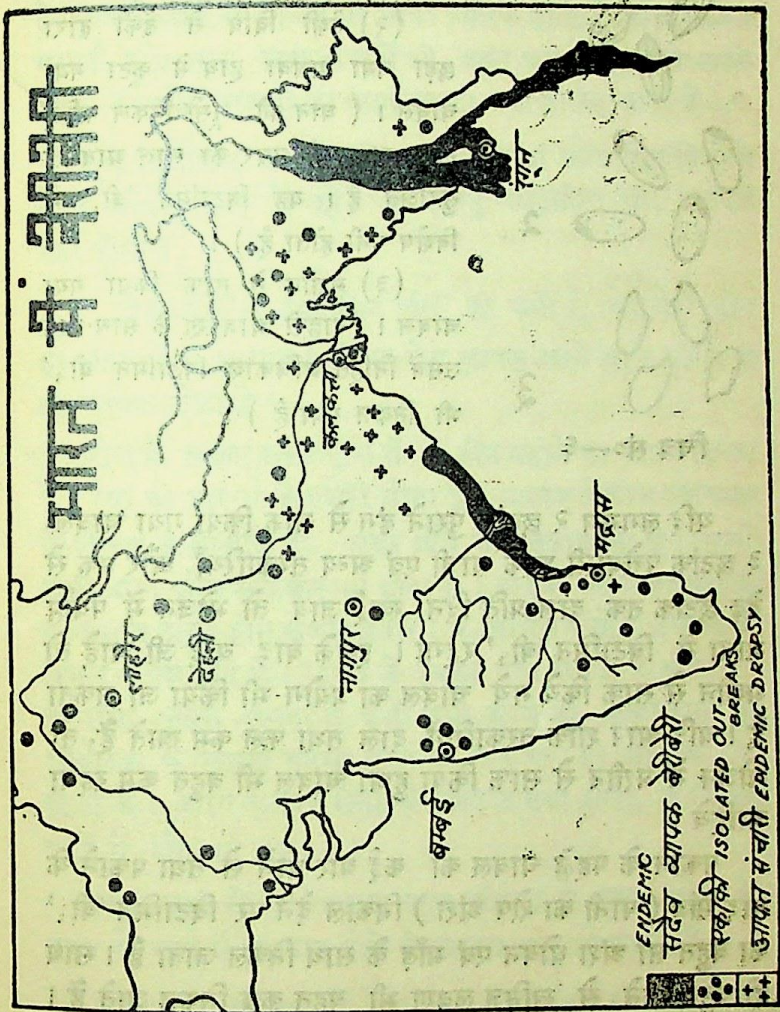
चित्र सं०—७ (रॉजर्स और मैगों के आधार पर)

चित्र सं०—६

(१) धान ।

(२) देशी विधि से ढेंकी द्वारा छड़ा गया अथवा हाथ से कूटा गया चावल। (धान की भूसी निकल गई है किन्तु चावल के ऊपर का लाल आवरण सुरक्षित है। यह विटामिन 'बी,' में विशेष धनी होता है)।

(३) मशीन से साफ किया गया चावल। (बाहरी आवरण के साथ-साथ उसमें निहित अधिकांश विटामिन 'बी,' भी निकल गया है)।

यदि लगभग २ छटांक पुराने ढंग से साफ़ किया गया चावल, ३ छटांक पत्तेवाली शाक भाजी एवं अन्य तरकारियाँ और एक से डेढ़ छटांक तक दाल प्रति दिन खाई जाय तो भोजन में पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'बी,' रहेगा। इसके बाद यदि जी चाहे तो मशीन से साफ किये गये चावल का प्रयोग भी किया जा सकता है। यदि आप शाक तरकारियाँ, दाल तथा फ़ल कम खाते हैं, तो भोजन में मशीन से साफ किया हुआ चावल भी बहुत कम रहना चाहिये।

पकाने के पहले चावल को कई बार धोने से तथा पकाने के बाद मांड़ (पानी का शेष अंश) निकाल देने पर विटामिन 'बी,' का बहुत सा अंश धोवन एवं माँड़ के साथ निकल जाता है। साथ ही बहुत धोने से खनिज लवण भी बहुत कुछ निकल जाते हैं। जिन चावलों में बहुत अधिक कनी (चावल की धूलि) या कीड़े होते हैं—उनको कई बार धोना पड़ता है। ग़रीब आदमी निर्धनता

के कारण ऐसा ही चावल लेते हैं और उसे अधिक धोकर खाते हैं। उनके खाने में चावल की मात्रा अधिक होती है और खनिज पदार्थ वाले अन्य खाद्य पदार्थों की बहुत कम। इसलिये उनके शरीर में खनिज लवणों की आवश्यकता बनी ही रह जाती है।

दूध में प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ, तथा अन्य विटामिन तो बहुत अधिक मात्रा में होते हैं किन्तु विटामिन 'बी,' अधिक नहीं होता।

'बेरी-बेरी'—विटामिन 'बी१' की कमी से 'बेरी बेरी' रोग हो जाता है। भारतवर्ष में यह रोग चावल खाने-वाले प्रान्तों में ही अधिक होता है।

रोग के लक्षण प्रकट होने में दो तीन महीने का समय लगता है। रोग का आरम्भ धीरे धीरे होता है। प्रारम्भ में पाचन संस्थान के विकार उत्पन्न होते हैं; चक्कर और जी मतली होता है। कभी-कभी वमन और अतिसार भी होता है। बाद में स्नायविक-तन्तुओं पर प्रभाव उत्पन्न होने के कारण शरीर के विभिन्न अंगों में तत्सम्बन्धी लक्षण उत्पन्न होते हैं। हृदय में धड़कन होने लगती है और रोगी का सांस फूलने लगता है कभी कभी हृदय की मांसपेशियों की निर्बलता के कारण सहसा हृदय की गति बन्द हो जाने का डर रहता है। आगे चलकर रोगी को जलोदर तथा शरीर के विभिन्न अंगों में शोथ हो जाता है।

कभी कभी रोग के लक्षण बहुत शीघ्रता से प्रकट होते हैं। हृदय के कार्य में व्याघात होने से सहसा मृत्यु हो सकती है।

प्रारम्भिक अवस्था में रोग का सही निदान और उचित चिकित्सा होने पर रोग सुख साध्य है। रोगी के भोजन में आवश्यक सुधार करने से रोग के पुनराक्रमण का भय नहीं रहता।

विटामिन 'बी२'—का भोजन में होना नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः विटामिन 'बी२' कोई एक विटामिन नहीं है बल्कि यह कई विभिन्न विटामिनों का समूह है। अनाजों में यह बहुत कम और मिल के साफ किये हुये चावल में तो यह बहुत ही कम रहता है। कुछ दालों में यह बहुत अधिक मात्रा में होता है। इनमें उड़द की दाल, चना और अरहर मुख्य हैं। कुछ पत्तेवाले शाकों तथा अन्य तरकारियों में भी यह काफी होता है। लेकिन फलों में इसकी मात्रा अधिक नहीं होती। सबसे अधिक मात्रा में यह ख़मीर में होता है। दूध से प्राप्त वस्तुओं (मलाई, मट्ठा, दही और पनीर), चरबी रहित मांस, यकृत, अंडे, दाल और हरी तरकारियों में भी यह पर्याप्त मात्रा में मिलता है। निर्धन व्यक्तियों के भोजन में जिसमें दूध या मांस नहीं रहता 'बी२' विटामिन समूह की बड़ी कमी रहती है।

विटामिन 'बी२' की कमी के कारण मुहँ के कोनों पर उसके अन्दर तथा जीभ पर घाव हो जाते हैं। ये रोग बहुधा उन लोगों को होते हैं जिनके भोजन में मशीन से छंटा चावल ही अधिक मात्रा में रहता है। यदि ऐसे व्यक्तियों को प्रति दिन २-३ तोला सुखाया हुआ ख़मीर, या आधा सेर दूध अथवा २-३ अंडे खाने को दिये जावें तो यह रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है। यदि साथ ही आहार को अन्य सब बातों में भी संतुलित रक्खा जावे तो रोग और भी शीघ्र अच्छा होगा।

किसी वस्तु को बहुत देर तक लगातार पकाने अथवा उबालने से यह विटामिन नष्ट हो जाता है।

विटामिन 'ए' की भाँति विटामिन 'बी' हमारे शरीर में जमा नहीं रहता और इसलिये इस विटामिन की आवश्यकताओं के लिये हमें प्रति दिन नियमित रूप से उपर्युक्त वस्तुयें प्रयोग

करनी चाहिये। दूध पिलाने वाली माताओं को इस विटामिन की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है।

विटामिन 'बी$_{१}$' और 'बी$_{२}$' के अतिरिक्त इस वर्ग में अन्य अनेक विटामिन और होते हैं। विटामिन 'बी$_{३}$', 'बी$_{४}$', 'बी$_{५}$', 'बी$_{६}$', 'बी$_{७}$', 'फोलिक एसिड' आदि सब इसी वर्ग के सदस्य हैं। स्थानाभाव के कारण यहां इन सबका विस्तृत विवेचन सम्भव नहीं है। इनके बारे में आवश्यक ज्ञान लेखक की 'विटामिन और हीनता जनित रोग' नामक पुस्तक से प्राप्त किया जा सकता है।

विटामिन 'सी'

इस विटामिन के विषय में प्रसिद्ध है कि अन्य सब आविष्कारों एवं खोजों की भाँति इसकी जानकारी भी एक साधारण से घटनाचक्र पर अवलम्बित है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पुराने समय में मल्लाहों आदि को समुद्रयात्रा पर बहुत दिनों तक लगातार ताज़ा भोजन न मिलने के कारण इन भीषण रोगों का शिकार होना पड़ता था। इसी भाँति एक बार एक जहाज़ के सबके सब मल्लाह 'स्कर्वी' रोग से पीड़ित हो गये। उन सबके दांत और मसूड़े कमज़ोर हो गये और उनसे खून गिरने लगा। संयोगवश यह जहाज़ कुछ ही दिनों बाद एक ऐसे द्वीप के किनारे लगा जहाँ नीबू और संतरे के पेड़ बहुत थे। वहाँ उन्होंने वे फल खूब खाये और चलते समय बहुत से तोड़कर अपने साथ जहाज़ पर रख लिये। वे सब यह देख कर स्तम्भित रह गये कि उनका यह रोग शीघ्र ही दूर हो गया।

यद्यपि उन दिनों इन विटामिनों आदि का लोग नाम तक न जानते थे, परन्तु वे यह जान गये कि नारंगी और नीबू में कोई वस्तु ऐसी अवश्य है जो इस रोग को अच्छा कर देती है।

विटामिन 'सी' को 'एस्कोर्बिक एसिड' भी कहते हैं। इसकी कमी से 'स्कर्वी' नामक रोग हो जाता है जोकि विटामिन 'सी' की कमी दूर करने से अथवा 'एसकोर्बिक एसिड' (विशुद्धतम विटामिन 'सी') के प्रयोग से शीघ्र ही दूर हो जाता है। इसलिये इस विटामिन को हम 'स्कर्वीनाशक विटामिन' भी कह सकते हैं। 'स्कर्वी' रोग में मसूड़े सूज जाते हैं, उनसे खून निकला करता है, दांत ढीले पड़ जाते हैं, शरीर में नीले चकत्ते पड़ जाते हैं और बड़ी दुर्बलता मालूम पड़ती है।

उपलब्धि—यह विटामिन नारंगी, संतरा, नीबू, रसभरी, टमाटर, अमरूद और हरी शाकभाजियों जैसे कि शलजम, करमकल्ला आदि में पाया जाता है। कुछ अंशों में यह आलू में भी होता है। ताजे दूध और कच्चे मांस के रस में यह विटामिन बहुत थोड़ी मात्रा में होता है जो कि सूखाने और उबालने पर और भी कम हो जाता है।

उन तरकारियों में यह विटामिन अधिक मात्रा में रहता है जो हरी पत्ती के रूप में होती हैं और जिन्हें लोग साधारणतः साग कहते हैं, जैसे पालक, चौराई, मेथी, बथुआ आदि। परन्तु बासी होकर सूख जाने पर इनमें उपस्थित इस विटामिन का अधिकांश नष्ट हो जाता है।

अनाजों में उनकी साधारण अवस्था में विटामिन 'सी' बिलकुल नहीं होता। परन्तु यदि उनको कुछ समय तक पानी में भिगोया जाये और अंकुर निकलने लगें तो अनाज के भीतर और हरे अँकुरों में विटामिन 'सी' बन जाता है। अंकुर उत्पन्न करने का सबसे सुगम एवं उत्तम उपाय निम्न है :—

चना, गेहूँ, या बिना दली साबित दाल (मटर, अरहर, मसूर, आदि) को पहले पानी में २४ घंटे तक भिगो देना चाहिये और

चित्र सं०—८

उपयुक्त मात्रा में विटामिन 'ए' और 'डी' पाने वाला स्वस्थ बालक

('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)
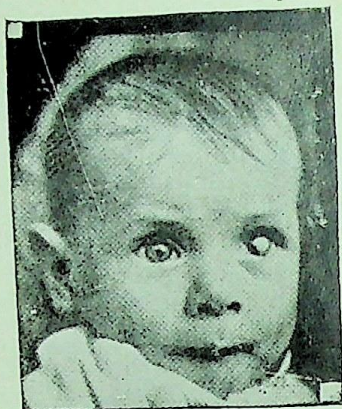
चित्र सं०—९

विटामिन 'ए' की कमी से उत्पन्न हुई आँखों की दशा (ज़ीरोफ्थेल्मिया) का एक रोगी बालक।
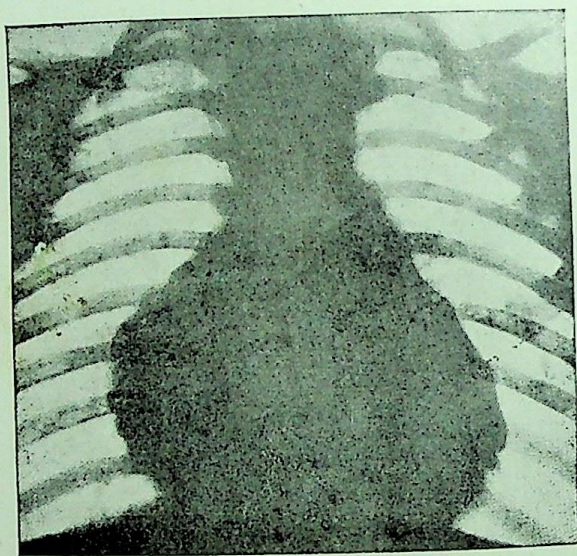
चित्र सं०—१०

'बेरी-बेरी' के रोगी के हृदय का 'एक्स-रश्मि' चित्र

(मांसपेशियों की निर्बलता के कारण हृदय का आकार बढ़ गया है)

('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)
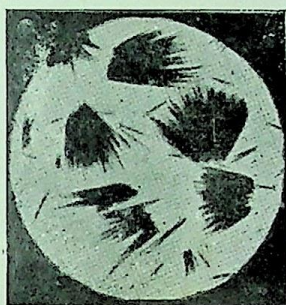
चित्र सं०—१२

विटामिन 'बी$_२$' (राइबोफ़्लेविन) के कण

('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)

चित्र सं०—१३
'बेरी-बेरी' का रोगी
('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)

चित्र सं०—१४

'स्कर्वी' के रोगी का मुँह

('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)
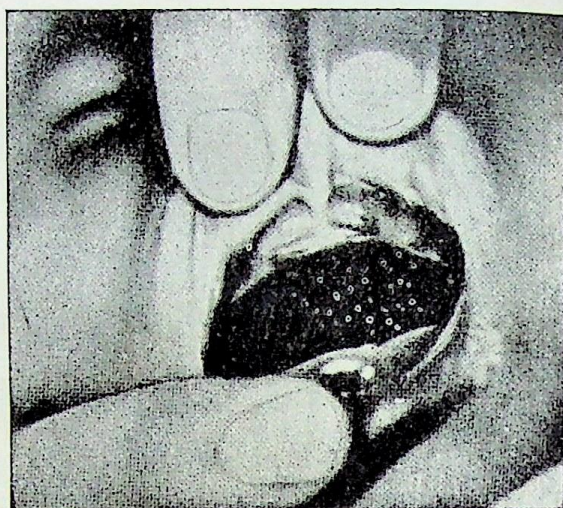
चित्र सं०—१५   'बाल-स्कर्वी' रोग में मसूड़ों की दशा
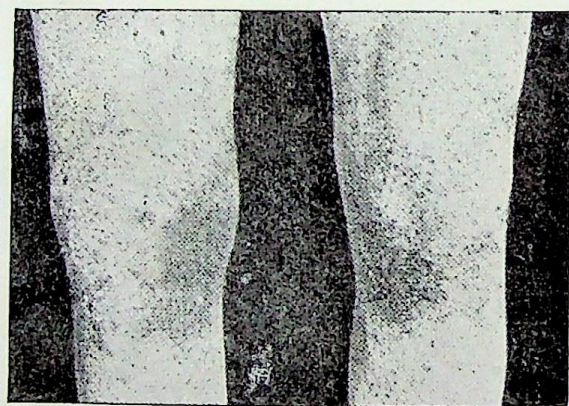
चित्र सं०—१६ 'स्कर्वी' में घुटनों के पास पैरों की त्वचा में उत्पन्न लक्षण
('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)
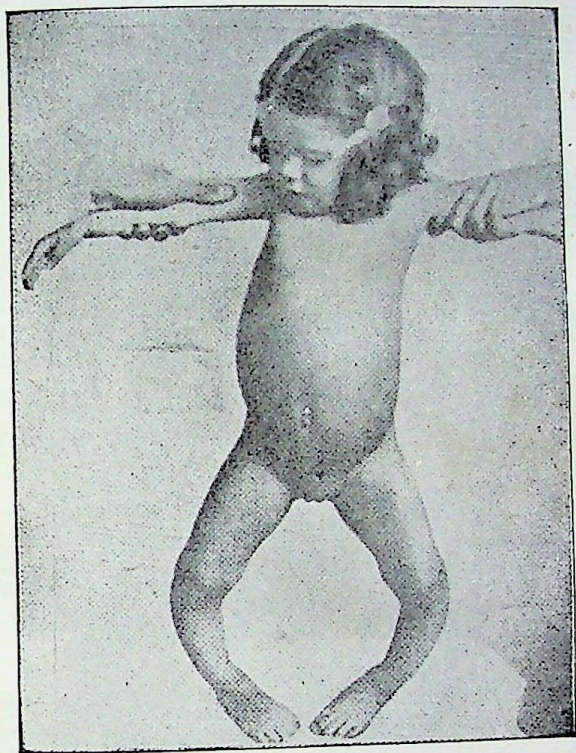
चित्र सं०—१७

'अस्थिविकृति' (रिकेट्स) का रोगी
(आयु—३ वर्ष)

('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)
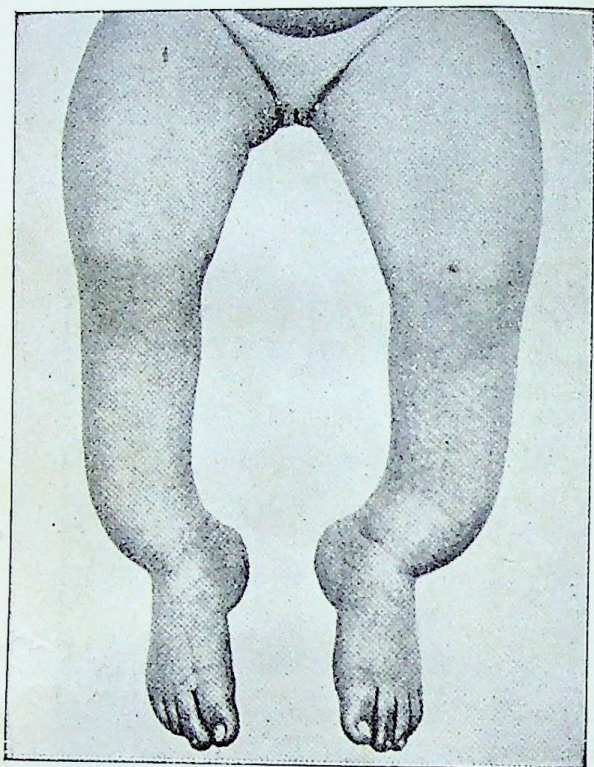
चित्र सं०—१८
'अस्थिविकृति' (रिकेट्स) के रोगी के टेढ़े पैर
(आयु—२२ माह)

('विटामिन और हीनता-जनित रोग' से)

तब भीगे कपड़े (साफ़ टाट या कम्बल के टुकड़े) या सीड़ वाली भूमि पर फैला कर उसे ऊपर से गीले कपड़े या बोरे से ढक देना चाहिये। यह कपड़ा या बोरा सूखने न देना चाहिये। इसके लिये उस पर समय-समय पर पानी छिड़कते रहना चाहिये। दो या तीन दिन में अंकुर निकल आते हैं। ऐसे अनाज को कच्चा ही खाना चाहिये, या, यदि उबाला भी जाये तो उसे १० मिनट से अधिक न पकाना चाहिये।

जब हरी शाक भाजी एवं ताजे फल उपलब्ध न हों तो अंकुर उगे अन्न से विटामिन 'सी' की पूर्ति बड़े सस्ते में सहज में ही हो सकती है। अंकुर उगी दालों में (चना, मूंग आदि) प्रति १०० ग्राम पीछे १०—१५ मिली ग्राम विटामिन 'सी' होता है।

एक देहाती मसल भी है 'जो खाये चना सो रहे बना', परन्तु पूर्ण लाभ के लिये चने को इतने समय तक तर रखना चाहिये कि उसमें अंकुर निकल आयें।

ताजे आँवले के रस में नारंगी के रस की अपेक्षा बीस गुना अधिक विटामिन 'सी' रहता है। आमले में जितनी अधिक मात्रा में विटामिन 'सी' रहता है उतना किसी अन्य फल में नहीं। एक आँवले में लगभग २ संतरों के बराबर विटामिन 'सी' होता है।

फलों और तरकारियों को गरम करने, पकाने या सुखाने से उनके विटामिन 'सी' का अधिकांश या प्रायः कुल अंश नष्ट हो जाता है। परन्तु आँवला इस का अपवाद है; पकाने पर भी इसका सब विटामिन नष्ट नहीं होता। इसके तीन कारण हैं— एक तो इसमें प्रारम्भ से ही इतना विटमिन 'सी' रहता है कि थोड़ा सा नष्ट होने पर भी काफी विटामिन बचा रह जाता है। दूसरे- आँवले की प्रतिक्रिया अम्लीय होती है और अम्लीय प्रतिक्रिया

कुछ खाद्य पदार्थों में निहित
विटामिन सी की मात्रा का
तुलनात्मक चित्रण
टमाटर (पका हुआ)
नीबू
पपीता (पका हुआ)
अनन्नास
नारंगी
पालक
गोभी
मिर्च (हरी)
मिर्च (सूखी)
करमकल्ला
धनिया
लाल चौलाई
सैंजन
सैंजन की पत्ती
अमरूद
आँवला
प्रत्येक खाद्य पदार्थ का वज़न
(२०० ग्राम)
०
१००
२००
३००
४००
५००
६००
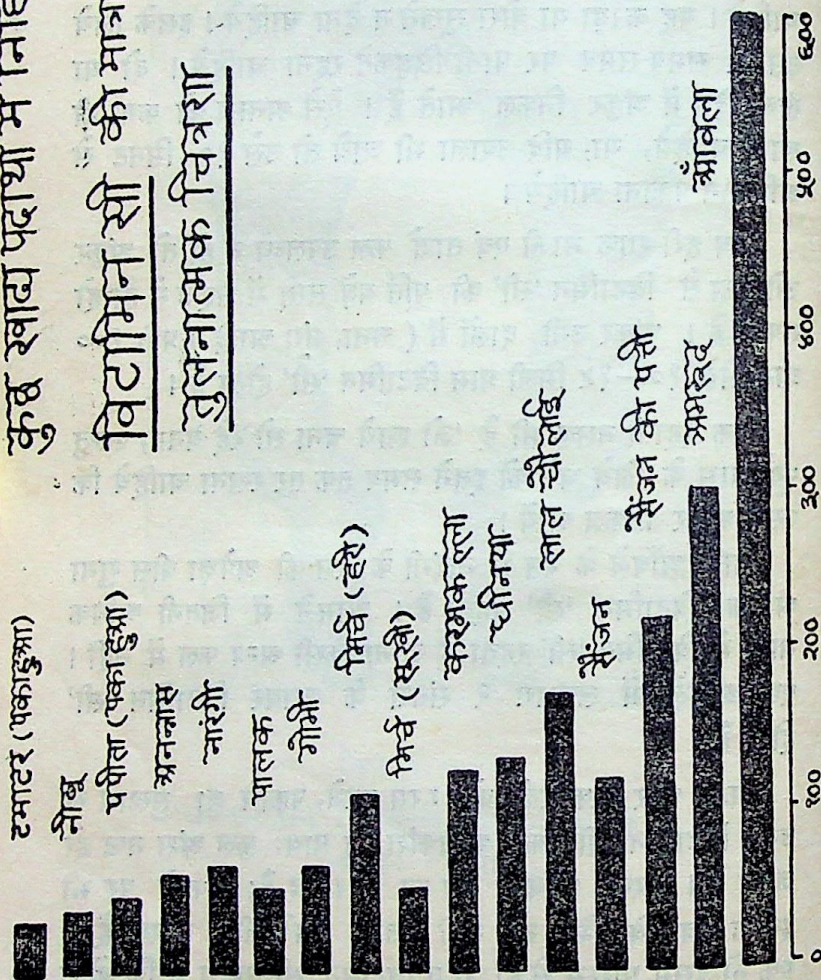
विटामिन 'सी' की बहुत कुछ रक्षा करती है, उसको नष्ट होने से बचाती है। तीसरे—आँवले में और भी कुछ ऐसे अन्य पदार्थ होते हैं जो इसमें उपस्थित विटामिन 'सी' की रक्षा करते हैं।

इसीलिये आँवले के मुरब्बे में भी कुछ विटामिन 'सी' रह जाता है। आँवले को सुखा कर रखने से उसमें उपस्थित विटामिन 'सी' का अधिकांश बचा रह जाता है। सुखाने की उत्तम रीति यह है—कि इसे हलके हाथ से कूट लिया जाये और फिर धूप में डाल कर शीघ्रता से सुखा दिया जाय और तत्पश्चात् गूदे को बारीक पीस लिया जाय। चूर्ण रक्खे रहने पर धीरे धीरे विटामिन 'सी' नष्ट होता है, विशेष कर यदि यह चूर्ण नम और गरम स्थान में रक्खा जाये। ताहम् साधारण रीति से रक्खे रहने पर भी आँवला चूर्ण महीनों तक उपयोगी रहता है।

आँवले के रखने लिये एक दूसरी सरल विधि यह है कि उसे नमक के घोल में रक्खा जाय। इसके लिये प्रथम तो आँवलों को खौलते पानी में ६-७ मिनट तक डुबा देना चाहिये और तत्पश्चात् उन्हें नमक के गाढ़े घोल में रख देना चाहिये। इस रीति से आँवले का विटामिन बहुत कुछ सुरक्षित रह जाता है। जब आँवलों को बहुत देर तक उबाला जाता है और फिर घी या तेल में तल कर नमक मसाला डाला जाता है, तो उनमें का अधिकांश विटामिन नष्ट हो जाता है।

अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे देशवासी आँवले के गुणों को जानते रहे हैं। 'धात्री फलं सदा पथ्यम्' की उक्ति इस बात की साक्षी है। आँवला चूर्ण से बनी टिकियें फौज में सिपाहियों को विटामिन 'सी' प्रदान करने के काम में आ रही हैं। १६४० में जब हिसार प्रान्त में दुर्भिक्ष के समय 'स्कर्वी' प्रचण्ड रूप धारण

कर रही थी—तब ताज़ा आँवला इस हीनताजनित रोग का अचूक इलाज सिद्ध हुआ था।

विद्यार्थियों एवं प्रौढ़ व्यक्तियों के सन्तुलित आहार में प्रतिदिन ३०—५० मिलीग्राम विटामिन 'सी' की मात्रा चाहिये। विटामिन 'सी' गरमी से नष्ट हो जाता है, विशेष कर यदि उसको बहुत देर तक आँच पर रखा जाय, इसलिये तरकारी पकाने पर बहुत कुछ विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है। तो भी यदि भोजन के साथ कुछ छटाँक ताजे फल और थोड़ी बहुत हरी तरकारी, विशेषकर पत्तीवाले साग रहें तो विटामिन 'सी' की आवश्यकता पूरी हो जायगी।

विटामिन 'सी' हरी घास खाने वाले जानवरों के ताज़े दूध में ही होता है। उबालने से यह नष्ट हो जाता है। इसलिये ऐसे छोटे बच्चे जो कि केवल उबाले हुये दूध अथवा कृत्रिम आहार पर आश्रित रहते हैं उन्हें प्रति दिन संतरे अथवा टमाटर का रस अवश्य देना चाहिये।

विटामिन 'डी'

उपलब्धि—यह पशुओं के यकृत और उनके यकृत से निकाले गये तेल, अंडे की जर्दी, दूध, मक्खन और घी में रहता है। परन्तु यह दूध और मक्खन ऐसी गाय, भैंसों से प्राप्त होना चाहिये जो हरी वनस्पति भी खाती हों और धूप में भी निकलती हों। घर में बन्द रहने वाली या केवल भूसा और खली खाकर रहने वाली गाय के दूध में विटामिन 'डी' प्रायः नहीं रहता। सबसे अधिक मात्रा में यह विटामिन मछलियों के यकृत से मिलता है। इस विटामिन की कमी से बच्चों में अस्थिविकृति

(सूखा) रोग हो जाता है। बड़ी उमर की स्त्रियों में भी यह रोग पाया जाता है और उनमें इसे 'मृदुलास्थि' कहते हैं।

मनुष्य की त्वचा में सूर्य-रश्मियों में उपस्थित पराकासनी किरणों के लगने पर विटामिन 'डी' स्वतः निर्मित होता है। यही कारण है कि अस्थिविकृति रोग बहुधा उन बच्चों को होता है जो अँधेरे घरों में रहते हैं और मृदुलास्थि रोग बहुधा उन स्त्रियों में होता है जो सदैव परदे में रहती हैं।

इन रोगों से बचने का उपाय इतना सरल और सस्ता है कि प्रत्येक मनुष्य इससे लाभ उठा सकता है। बहुत से घरों में जाड़े के दिनों में बच्चों को तेल लगाने के बाद धूप में बिठाने की प्रथा है। ऐसा करना बहुत स्वास्थ्यप्रद है। केवल इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य के प्रकाश से आँखें खराब न होने पावें। गर्मी के दिनों में धूप में रहने में कुछ कठिनाई हो सकती है, परन्तु उन दिनों भी प्रातःकाल स्नान के समय धूप में थोड़ी देर के लिये नंगे बदन बैठने में कोई विशेष असुविधा नहीं होती। औषधियों के व्यवहार से विटामिन 'डी' प्राप्त करने में अधिक पैसे की आवश्यकता है।

कार्य—विटामिन 'डी' पर हमारे शरीर में कैलशियम का सारा कार्य आश्रित है। यह हमारे शरीर में कैलशियम और फ़ॉसफोरस का अनुपात ठीक रखता है और भोजन से उनके हजम होने तथा रक्त में मिलने में सहायता करता है। इसलिये इसकी कमी होने पर भोजन में उपस्थित कैलशियम और फ़ॉसफोरस का अधिकांश बिना हजम हुये ही मल के साथ बाहर निकल जाता है। रक्त में इनका परिमाण कम हो जाता है। इसलिये दाँतों एवं हड्डियों के ठीक-ठीक विकास में गड़बड़ी होती है। इस विटामिन की कमी ही बच्चों के अस्थिविकृति रोग (सूखा) का मुख्य कारण है। इस-

लिये इस रोग से पीड़ित बच्चों को कॉडलिवर आयल देना चाहिये, और उन्हें तेल की मालिश करके रोज थोड़ी देर के लिये धूप में बिठाना चाहिये—क्योंकि जैसा कि पहले कहा जा चुका है सूर्य-रश्मियों में उपस्थित पराकासनी किरणों की शक्ति की सहायता से यह विटामिन हमारी त्वचा में स्वयं ही निर्मित होने की क्षमता रखता है।

विटामिन 'ई'

कार्य—यह पदार्थ गर्भाशय में भ्रूण के विकास एवं वृद्धि के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस विटामिन की कमी में बच्चा पूरा ९ माह का होने के पहले ही मर जाता है। यह विटामिन बार-बार गर्भपात होने वाले केसों में भी लाभप्रद है। इसकी कमी से पुरुष का वीर्य शुक्राणुविहीन हो जाता है और उसमें सन्तानोत्पादिनी शक्ति नहीं रहती। विटामिन 'ई' की कमी से स्त्रियाँ वन्ध्या हो जाती हैं और वे गर्भ नहीं धारण करतीं। यदि संयोगवश कोई गर्भवती हो भी जाती है तो उसके गर्भ में स्थित भ्रूण का विकास एवं वृद्धि पूर्ण-रूपेण नहीं होने पाती। बच्चा गर्भ में पूरा ९ महीने का होने के पहले ही मर जाता है अथवा गर्भपात हो जाता है।

उपलब्धि—यह विटामिन अनाजों के अँकुओं में, बहुत से वनस्पति तेलों में, सलाद, चुकन्दर और हरी पत्तियों में पाया जाता है। कॉड लिवर आयल में यह विटामिन बिलकुल नहीं होता। अभी हाल में गेहूँ के अँकुओं से एक ऐसा तेल तैयार किया गया है जिसमें विटामिन 'ई' सबसे अधिक मात्रा में होता है।

विटामिन 'के'

उपलब्धि—प्राकृतिक रूप में यह हरी शाक-भाजियों में

पाया जाता है। पालक, करमकल्ला, और अल्फाअल्फा घास आदि में यह खाद्य-तत्व होता है। पूर्ण विशुद्धावस्था में इसका पृथक्करण किया जा चुका है।

कार्य—विटामिन 'के' का रक्त जमने की क्रिया से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकी हीनता से रक्त में प्रोथ्रोम्बिन की मात्रा कम हो जाती है। परिणामतः रक्त जमने की क्रिया में विलम्ब होता है। ऐसे व्यक्तियों में एक बार किसी स्थान पर चोट लगने पर बड़ी देर तक रक्त-स्राव हुआ करता है। उनमें स्वतः रक्त स्राव की प्रवृत्ति हो जाती है।

उपसंहार

इस भाँति अब हम यह जान गये हैं कि विटामिन हमारे भोजन के कितने महत्वपूर्ण अंश हैं। विटामिन रहित भोजन यदि निष्प्राण कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। हम यह भी जान गये हैं कि साधारण अवस्थाओं की अपेक्षा, बालकों को, गर्भवती स्त्रियों एवं दूध पिलाने वाली माताओं को तथा रोगियों को विटामिनों की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। हमने स्थान स्थान पर यह भी बताने का प्रयत्न किया है कि विभिन्न विटामिन किस प्रकार दैनिक आवश्यकता के लिये सुगमता से उपलब्ध किये जा सकते हैं। और किस भाँति उन्हें नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

यहाँ केवल मुख्य-मुख्य विटामिनों का बहुत ही संक्षेप में विवेचन किया गया है। इनके अलावा और भी कई विटामिन होते हैं जो कि इन्हीं की भाँति हमारे शरीर के लिये अत्यावश्यक हैं। इनका वर्णन स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं किया जा सका।

इस आवश्यक विषय पर अधिक विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिये लेखक की 'विटामिन और हीनता-जनित रोग' नामक पुस्तक देखिये।

जल

पहले प्रकरण में हम भोजन की व्याख्या कर चुके हैं। जिन पदार्थों के सेवन से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शरीर का पोषण, संरक्षण और संवर्धन होता है, अर्थात् शरीर की कमी पूरी होकर उसकी अभिवृद्धि होती है, ऐसे भक्ष्य पदार्थों को भोजन कहते हैं। भोजन के मुख्य मुख्य वृद्धिकारक शक्तिउत्पादक और संरक्षक वर्ग के मूल अवयवों का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है।

जल भी हमारे आहार का एक आवश्यक अंग है। परन्तु जल इतना सर्वसुलभ है कि हम इसकी उपयोगिता का कोई विशेष महत्व नहीं समझते। और शायद इसीलिये बहुत से पाठक यह पढ़ कर आश्चर्य करने लगेंगे कि जल हमारे लिये अन्य पदार्थों से कहीं अधिक आवश्यक है। परन्तु बात ऐसी ही है। बिना भोजन के तो मनुष्य हफ्तों जीवित रह सकता है। परन्तु यदि जल न मिले तो उसके जीवन का अन्त बहुत ही अल्प समय में हो जायेगा। उपवास (केवल भोजन न मिलना) करने पर हमारा शरीर बहुत दिनों तक अपने कार्य करता रहेगा। मनुष्य तब तक जीवित रह सकता है जब तक उसके शरीर में संग्रहित तमाम वसा, कर्बोज, तथा लगभग ४०% प्रोटीन

शरीर के कार्यों के लिये आवश्यक शक्ति के उत्पादन में न व्यय हो जाये। परन्तु शरीर में उपस्थित जल के परिमाण में केवल १० प्रतिशत की कमी हो जाने पर ही भीषण लक्षण उत्पन्न हो जायेंगे और यह कमी २० प्रतिशत हो जाने पर तो मृत्यु निश्चित है (यदि शीघ्र ही तत्परता के साथ चिकित्सा न की गई)। इसलिये इस अध्याय में हम संक्षेप में अपने आहार में जल का महत्व और उसके कार्यों की विवेचना करेंगे।

पानी को संस्कृत में 'जीवन' कहा गया है। वास्तव में वायु के अतिरिक्त इस पदार्थ में सबसे अधिक संजीवन शक्ति है। जेठ आसाढ़ की धूप में दो चार कोस चलने या अधिक परिश्रम करने के उपरान्त जितनी शांति एक गिलास ठंडे पानी को पीकर होती है उतनी शान्ति, उतना सन्तोष, उतना सुख संसार के और किसी पदार्थ से सम्भावित नहीं।

हमारे शरीर में जल

मनुष्य शरीर का लगभग ७० से ७५ प्रतिशत भाग केवल जल है। इस जल का अधिकांश शरीर के कोषों के अन्दर रहता है। थोड़ा सा हिस्सा कोषों के बाहर उनके बीच में और रक्त में रहता है—पानी का यह हिस्सा हमारे शरीर का २५ प्रतिशत है। इस २५% का लगभग ३ चौथाई हिस्सा तो हमारे शरीर के कोषों के बाहर उनके बीच में रहता है और शेष १ चौथाई रक्त में उसे तरल रखने के लिये। इस भाँति अपने शरीर में उपस्थित पानी को हम दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम तो वह भाग जो कि कोषों के अन्दर उनके 'जीवन रस' के साथ निहित है। जल के इस भाग को हम 'अन्तर्कोषीय' कहेंगे। दूसरा भाग वह है जो कोषों के बाहर उनके बीच में तथा रक्त

में उपस्थित होता है; इस भाग को हम 'बहिर्कोषीय' शारीरिक जल कहेंगे।

एक युवा पुरुष (जिसका भार लगभग ७० किलोग्राम हो) के शरीर में लगभग १७ लिटर 'वहिर्कोषीय' शारीरिक जल होता है। इसका एक चौथाई यानी साढ़े तीन लिटर रक्त में रहता है।

शरीर में उपस्थित लगभग सब का सब सोडियम तथा क्लोराइड हमारे कोषों के बीच में उपस्थित 'वहिर्कोषीय' जल में ही विलीन रहता है। हमारे शरीर में उपस्थित सैन्धव (साधारण-नमक) की सम्पूर्ण मात्रा लगभग १५० ग्राम है। प्रतिदिन लगभग १०—२० ग्राम सैन्धव हम अपने भोजन में खाते हैं और लगभग इतना ही सैन्धव उत्सर्जक इन्द्रियों द्वारा शरीर के बाहर निकाल देते हैं। इस सब के लिये हमारे शरीर में जल का उचित मात्रा में होना नितान्त आवश्यक है।

यदि सहसा हमारे शारीरिक जल का अधिकांश बाहर निकल जाये तो भीषण लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। हैजे का मरीज इसका आसान उदाहरण है। जल की हानि के साथ साथ उसमें उपस्थित सैन्धव भी शरीर के बाहर निकल जाता है जिससे कि शरीर के कार्यों में और भी अधिक व्याघात होता है। पानी की कमी से रक्ताभिसरण में अन्तर पड़ जायेगा और उसकी गति मन्द हो जायेगी-परिणामतः शरीर के तन्तुओं को उचित परिमाण में ओषजन न मिल सकेगी। शारीरिक उष्णता और शक्ति के उत्पादन में भी अव्यवस्था हो जायेगी।

मलोत्सर्जन क्रिया में भी व्याघात होगा और मल-पदार्थ शरीर के भीतर ही संचित होने लगेंगे क्योंकि पानी की कमी के कारण पसीने और मूत्र की मात्रा कम हो जायेगी और इनके साथ निकलने वाले पदार्थों के निष्कासन में कमी हो जायेगी।

जल की कमी से विभिन्न पाचक रसों के निर्माण में भी व्याघात होगा। उनका परिमाण कम हो जायेगा। परिणामतः पाचन शक्ति मन्द पड़ जायेगी और पोषण-संस्थान के कार्यों में भी गड़बड़ी होने लगेगी।

हमारे शरीर के प्रत्येक कोष में निरंतर होनेवाली रासायनिक क्रियाओं के लिये भी पानी नितान्त आवश्यक है। इस भाँति जल हमारे शरीर में निम्न कार्यों के लिये जरूरी है:—

१) पाचक-रसों के निर्माण के लिये

२) भोजन की पाचन-क्रिया और उसके आत्मीकरण के लिये

३) रक्त का उपादान स्थिर रखने के लिये और जल में घुलनशील पदार्थों को स्थानान्तरित करने के लिये

४) हमारे शरीर के तन्तुओं में उपस्थित पदार्थों को घुलनशील रखने के लिये जिससे कि शरीर की रासायनिक क्रियायें आसानी से हो सकें

५) खनिज लवणों को शारीरिक तन्तुओं और रक्त में उचित अनुपात में रखने के लिये

६) जल में घुलनशील मल पदार्थों के निष्कासन के लिये

७) शरीर का तापमान (९८·४° फ०) स्थिर रखने के लिये।

जल की उपयोगिता और आहार में उसका महत्व स्पष्ट हो गया है। अब हमें देखना है कि हमारे शरीर को यह पानी कहाँ से प्राप्त होता है और हमें कब कितने जल की आवश्यकता होती है। हमारे शरीर में जल निम्न विधियों से पहुँचता है—

१) तरल पदार्थों जैसे, पानी, शरबत, चाय आदि के सेवन से

२) भोजन के अन्य भक्ष्य पदार्थों के साथ

३) शरीर में ओषजनीकरण क्रिया के परिणामस्वरूप हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के संयोग से उत्पन्न हुआ जल।

कितना पानी पियें ?

यह इस बात पर निर्भर करता है कि हमारे शरीर से कितना पानी बाहर निकलता है और खाने आदि के साथ कितना पानी हमारे शरीर में पहुँचता है। गर्मी के दिनों में स्वभावतः हमें अधिक पानी पीना पड़ेगा क्योंकि पसीने के रूप में हमारे शरीर में उपस्थित जल का बहुत सा भाग बाहर निकल जाता है। इसी भाँति ज्वर के रोगी को तथा बहुत अधिक क़ै दस्त हो जाने के उपरान्त भी अधिक पानी की आवश्यकता होती है। जल की यह अधिक मात्रा शरीर में निर्मित तथा उपस्थित दूषित पदार्थों के निष्कासन में भी सहायता करेगी।

एक स्वस्थ युवा मनुष्य को भक्ष्य और पेय (जैसे दूध, चाय आदि) पदार्थों के साथ पहुँचे हुये जल की अपेक्षा लगभग ४-८ गिलास पानी की और आवश्यकता होती है। यह पानी इच्छानुसार पिया जा सकता है। भोजन से पहले अथवा भोजन के साथ थोड़ा सा पानी पीने से पाचक-रस अधिक मात्रा में आँतों में पहुँचते हैं और भूख बढ़ जाती है। पाचन-शक्ति व्यवस्थित रहती है। परन्तु यदि पानी बहुत अधिक ठंडा होगा (बर्फ डला हुआ) या भोजन का प्रत्येक कौर पानी के साथ निगला जायेगा—तो ऐसी दशा में पाचन शक्ति मन्द पड़ जायेगी और भोजन ठीक से हज़म नहीं होगा।

सुबह उठ कर सबसे पहले १ गिलास शीतल जल पीना बहुत लाभप्रद बताया गया है। इसे 'उषा-पान' कहते हैं। कम से कम

मलावरोध के लिये तो यह एक बहुत ही सुगम एवं उत्तम उपाय है। भोजन करने से लगभग ४५ मिनट पहले थोड़ा सा पानी पी लेना भी ऐसी दशा में सहायक होता है। निम्न समयों पर पानी लाभ के साथ पिया जा सकता है। इसकी अपेक्षा भी जब इच्छा हो तब पीना चाहिये।

१-२ गिलास प्रातःकाल (उषापान)।

१ ,, लगभग १० बजे।

१ ,, दोपहर भोजन के साथ।

१ ,, तीसरे पहर।

इसकी अपेक्षा जब इच्छा हो।

वायु

पिछले पृष्ठों में हमने अपने शरीर की उपमा रेल के इंजन से दी है। जिस भाँति इंजन को कोयले और पानी की आवश्यकता होती है उसी भाँति हमारे शरीर को भी भोजन और जल की आवश्यकता है। परन्तु यदि इंजन को वायु न मिले तो न तो कोयला ही जलेगा और न शक्ति उत्पन्न होगी और इंजन ज्यों का त्यों खड़ा रहेगा। यही हाल हमारे शरीर का भी है। भोजन के प्रत्येक मूल अवयव, जल आदि सबके उचित परिमाण में रहते हुये भी यदि हमें वायु न मिले तो हमारा शरीर इन पदार्थों का बिलकुल भी उपयोग नहीं कर सकेगा। न तो शक्ति ही उत्पन्न होगी और न शरीर के अन्य कार्य ही हो सकेंगे। इसलिये वायु हमारे शरीर में शक्ति-उत्पादन और उसके पोषण के लिये नितान्त आवश्यक है। इस भांति हवा भी हमारे शरीर के लिये आवश्यक आहार का एक मुख्य अंग है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि हमारे चारों ओर उपस्थित वायु एक मिश्रित वायवीय पदार्थ है जिसमें लगभग—

२० प्रतिशत ऑक्सीजन ; ७६.६ प्रतिशत नाइट्रोजन ; ०.०४ प्रतिशत कार्बनडाइऑक्साइड एवं कुछ अन्य गैसें तथा धूल-कण, कीटाणु एवं जलकण आदि विद्यमान हैं। इनमें से ऑक्सी-

जन ही हमारे लिये आवश्यक है। शरीर की ओषजनीकरण क्रियाओं एवं शक्ति-उत्पादन के लिये हमें ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।

'प्रत्येक जीवित प्राणी के लिये ऑक्सीजन आवश्यक है' इस तथ्य का सर्वप्रथम अनुसन्धान लैवॉयज़ियर (१७४१-१७६४ ई०) नामक एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने किया था। उसने यह भी दिखाया था कि प्रत्येक प्राणी हवा से ऑक्सीजन लेकर उसमें कार्बन डाइऑक्साइड गैस छोड़ देता है। कार्बनडाईऑक्साइड गैस शरीर के कोषों में होने वाली रासायनिक एवं ओषजनीकरण क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है।

किस भाँति ऑक्सीजन हमारे शरीर में पहुँच कर अपने कार्यों का प्रतिपादन करता है इसका संक्षिप्त वर्णन नीचे किया गया है—

जब हम सांस लेते हैं तो बाहर की शुद्ध वायु हमारे फेफड़ों में प्रवेश करती है। हमारी प्रधान श्वास-प्रणाली आगे चलकर दो नलिकाओं में विभाजित हो जाती है—और फिर ये बारी बारी से और भी छोटी छोटी शाखाओं में बंट जाती हैं। हमारे सांस लेने पर इन्हीं नलिकाओं के द्वारा बाहर की वायु अन्दर पहुँचती है। इनमें से प्रत्येक नलिका के अन्तिम सिरे पर श्लैष्मिक कला बहुत पतली हो जाती है और बहुत से वायु-कोष बना लेती है। इन्हीं वायु-कोषों में बाहर की वायु पहुँचती है। वायु-कोषों की दीवाल की श्लैष्मिक कला इतनी पतली होती है कि उसमें से आसानी से वायु में उपस्थित ऑक्सीजन और रक्त-केशिकाओं में उपस्थित दूषित रक्त की हानिकर गैसों का पारस्परिक आदान-प्रदान हो सकता है।

हमारे शरीर का दूषित रक्त हृदय के दाहिने क्षेपक कोष्ठ के द्वारा फेफड़ों में भेजा जाता है। यहाँ आकर यह बहुत ही सूक्ष्म
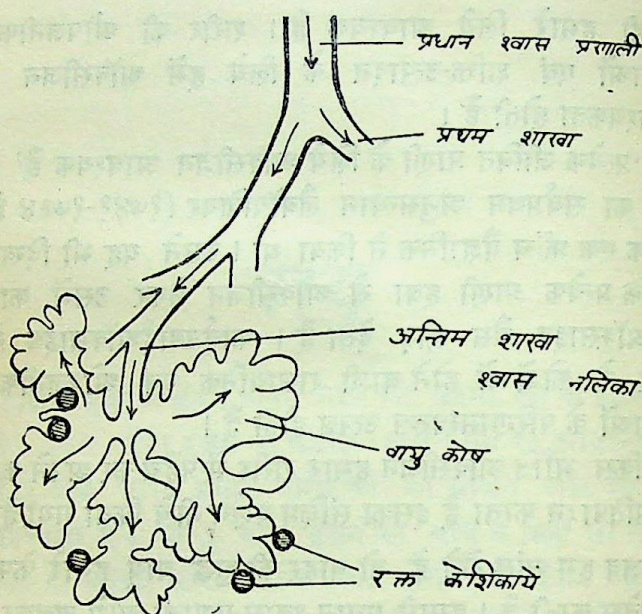
चित्र सं०—२०

रक्त-केशिकाओं में बहता है। ये रक्त-केशिकायें फेफड़े के वायु कोषों की परस्पर मिली हुई दीवालों के बीच में रहती हैं। इस भाँति वायु कोषों में उपस्थित शुद्ध हवा और रक्त-केशिकाओं में उपस्थित दूषित रक्त के बीच केवल वायुकोष की श्लैष्मिक कला और रक्त-केशिका की दीवाल ही होती है। यह तन्तु इतना पतला और ऐसा होता है कि इसमें से वायवीय पदार्थों (गैसों) का आदान प्रदान हो सकता है।

जब दूषित रक्त फेफड़ों में पहुँचता है तब इसमें साधारणतया केवल १४ सी. सी. ऑक्सीजन प्रतिशत उपस्थित होती है। अधिक परिश्रम करने पर ऑक्सीजन अधिक व्यय होती है और दूषित रक्त में इसकी मात्रा १४ से घट कर केवल ३-४ सी. सी.

तक रह जाती है; कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा साधारण अवस्था से अधिक हो जाती है।

परन्तु जब दूषित रक्त फेफड़ों के वायुकोषों में उपस्थित शुद्ध वायु के सन्निकट पहुँचता है तब उसमें उपस्थित कार्बनडाइ-ऑक्साइड गैस उसमें से निकल कर वायुकोषों में पहुँच जाती है और शुद्ध वायु में से ऑक्सीजन रक्त में विलीन हो जाती है। इस भाँति एक बार फिर दूषित रक्त शुद्ध होकर हमारे शरीर के तन्तुओं को आवश्यक ऑक्सीजन पहुँचाने को तत्पर हो जाता है। इस समय इसमें लगभग १६ सी. सी. प्रतिशत ओषजन होती है। कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा कम हो चुकी है और अब फेफड़ों से यह रक्त फिर हृदय के बायें भाग में पहुँच कर हमारे शरीर की यात्रा करने को प्रस्तुत हो जाता है।

वायुकोषों में उपस्थित वायु में ऑक्सीजन की कमी हो चुकती है और कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। अब इस अशुद्ध वायु को हम सांस निकाल कर बाहर फेंक देते हैं और फिर अन्दर सांस लेकर वायुकोषों में शुद्ध वायु ले लेते हैं। इस भाँति प्रति मिनट में हम लगभग १८ बार सांस लेते हैं। रक्त परिभ्रमण निरन्तर होता रहता है—और रक्त शुद्धि भी।

रक्त में ऑक्सीजन विलीन रखने का कार्य 'हीमोग्लोबिन' का है जिसका संकेत हम लोहे की आवश्यकता के प्रकरण में संक्षेप में कर चुके हैं। इस पदार्थ के निर्माण के लिये लोहा आवश्यक है। रक्ताल्पता रोग में इस पदार्थ की कमी हो जाती है और तब हमारे शरीर के तन्तुओं को ओषजन की उचित मात्रा नहीं पहुँच पाती। परिणामतः रक्ताल्पता में पाये जाने वाले लक्षण शनैः शनैः प्रकट होने लगते हैं।

अब हमें यह देखना है कि किस भांति हमारे हृदय से चला

हुआ शुद्ध रक्त अपना कार्य पूरा करता हुआ फिर अशुद्ध होकर वापस आता है।

हृदय से शुद्ध रक्त चलकर हमारे शरीर की धमनियों में बहता हुआ अन्त में हमारे तन्तुओं में उपस्थित सूक्ष्म रक्तकेशिकाओं के जाल में पहुँचता है। इन रक्तकेशिकाओं की दीवाल भी बहुत पतली और ऐसी होती है कि उसमें से आसानी से गैसों का आदान-प्रदान हो सकता है। जब शुद्ध रक्त केशिका में घुसता है उस समय उसमें १९ सी. सी. ऑक्सीजन (प्रति १०० सी. सी. रक्त में) रहती है। केशिका में बहते हुये, तन्तुओं के सन्निकट आने पर रक्त में विलीन ऑक्सीजन 'हीमोग्लोबिन' से स्वतंत्र होकर शरीर के तन्तुओं में उनकी आवश्यकता पूर्ति के लिये पहुँच जाती है। और तन्तुओं की रासायनिक क्रियाओं के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुई कार्बनडाइऑक्साइड केशिका की पतली दीवाल में से रक्त में विलीन हो जाती है। अब इस भाँति फिर एक बार यह रक्त अशुद्ध हो जाता है, ऑक्सीजन की मात्रा १९ से घट कर केवल १४ सी. सी. प्रतिशत ही रह जाती है और कार्बन-डाइऑक्साइड का परिमाण बढ़ जाता है।

इस भाँति अपना निर्दिष्ट कार्य पूरा कर के यह अशुद्ध रक्त एक बार फिर शुद्ध होने के लिये फेफड़ों में पहुँचने से पहले अपने पम्पिग स्टेशन हृदय की ओर प्रयाण कर देता है। और इस भाँति यह चक्र जब तक हम जीवित रहते हैं निरंतर चला करता है। हमारे तंतुओं को ओषजन मिलती रहती है और दूषित पदार्थ शरीर के बाहर निकलते रहते हैं। अगले पृष्ठ पर दिये गये चित्र की सहायता से उपर्युक्त कार्य प्रणाली सुगमता से समझी जा सकती है।
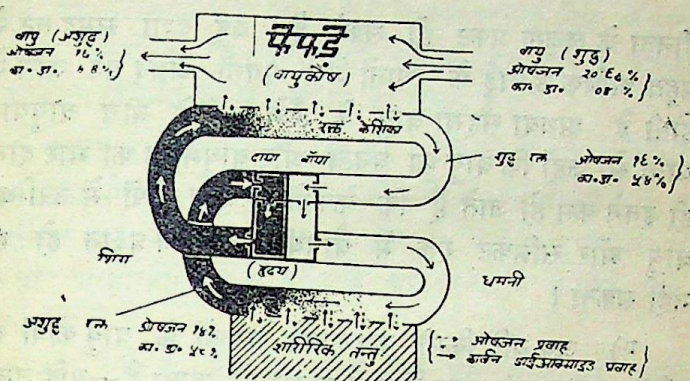
चित्र सं०—२१

रक्त-परिभ्रमण चक्र

ओषजन की आवश्यकता और उसके कार्यों का संकेत हम इस प्रकरण के प्रारम्भ में ही कर चुके हैं। अब इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम ओषजन हीनता के लक्षणों और हमारे शरीर पर उसका क्या प्रभाव होगा इसका संक्षिप्त विवेचन करेंगे। उन दशाओं और परिस्थितियों का भी संक्षेप में उल्लेख किया जायेगा जिनके परिणाम-स्वरूप हमारे शरीर के तन्तुओं में ओषजन की कमी हो सकती है।

ओषजन हीनता—यदि हम यह समझ गये हैं कि किस भाँति ओषजन फेफड़ों से हमारे शारीरिक तन्तुओं तक पहुँचती है—तो यह अनुमान करना सरल हो जाता है कि किन-किन दशाओं में हमारे तंतु ओषजन हीनता के शिकार हो सकते हैं—

१) सबसे प्रथम तो जब स्वयं हमारे चारों ओर के वायुमंडल का भार कम हो और उसी के अनुसार हमारे फेफड़ों के वायु कोषों में उपस्थित वायु का दबाव भी कम हो—ऐसी दशा में गैसों के आदान-प्रदान में व्याघात होता है और ओषजन-

हीनता के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। यह दशा समुद्र तट से बहुत अधिक ऊँचाई के स्थानों जैसे, पर्वतों आदि पर जाने से होती है अथवा सहसा वायु के ऊँचे स्तरों के बीच वायुयान यात्रा से, जहाँ कि वायु का घनत्व और वायुमंडल का भार दोनों ही इतने कम हो जाते हैं कि फेफड़ों के वायु कोषों में उपस्थित वायु और सन्निकट रक्त में वायवीय आदान-प्रदान हो ही नहीं सकता।

२) जब यदि किसी कारणवश फेफड़ों के वायु कोषों की श्लैष्मिक कला की दशा में कोई अन्तर हो जाता है—यदि उनमें शोथ अथवा सूजन आ जाती है जैसा कि 'न्यूमोनिया' के रोगी में होता है—तब भी गैसों के पारस्परिक आदान प्रदान में व्याघात होता है और ऑक्सीजन उचित मात्रा में वायु में से रक्त में नहीं पहुँच पाती।

३) जब हमारे चारों ओर के वायु-मंडल में जिसमें हम उस समय साँस ले रहे हैं—ओषजन हो ही न जैसाकि बहुधा अंधे कुओं और खत्तियों में उतरने पर पाया जाता है।

४) यदि किसी रोगवश हमारे फेफड़ों का अधिक भाग अपना कार्य न कर सके।

५) यदि और सब ठीक हो परन्तु फेफड़े में अशुद्ध रक्त ही शुद्ध होने के लिये न आये अथवा शरीर के अन्य किसी अंग में रक्त-परिभ्रमण में व्याघात हो रहा हो—तब भी हमारे शारीरिक तन्तु ओषजन हीनता से ग्रसित हो जायेंगे।

६) यदि रक्त में 'हीमोग्लोबिन' की मात्रा कम हो जाये अथवा उसमें कोई ऐसा परिवर्तन हो जाये जिससे कि वह ऑक्सीजन को अपने में विलीन न कर सके—ऐसी दशा में भी हमारे तंतुओं में ऑक्सीजन की कमी हो जायेगी। रक्ताल्पता रोग में 'हीमोग्लो-

बिन' का परिमाण घट जाता है। इसका कारण लोहे की कमी अथवा अत्यधिक रक्त-विनाश हो सकता है। इनकी अपेक्षा रक्ताल्पता के और भी कई कारण हो सकते हैं।

'कार्बन मोनोऑक्साइड' गैस की उपस्थिति में 'हीमोग्लोबिन' का उक्त गैस के साथ संयोग होने के बाद 'हीमोग्लोबिन' का उपस्थित होना न होना बराबर ही होता है क्योंकि उक्त परिवर्तन के बाद 'हीमोग्लोबिन' ओषजन के आदान-प्रदान के लिये व्यर्थ हो जाता है।

७) अन्त में जब सब कुछ ठीक हो—वायु का दबाव, श्लैष्मिक कला की अवस्था, रक्त-परिभ्रमण और रक्त में उपयुक्त परिमाण में 'हीमोग्लोबिन'—ऐसी दशा में रक्त शुद्ध तो ठीक से हो जाता है और उसमें उचित परिमाण में ओषजन भी विद्यमान रहती है—परन्तु कभी कभी जैसे कि 'साइनाइड' विष के प्रभाव से हमारे शारीरिक तन्तुओं की ओषजन प्रयोग कर सकने की क्षमता का नाश हो जाता है और तब हमारा शरीर ओषजन हीनता का शिकार हो जाता है।

ओषजन हीनता के लक्षण और हमारे शरीर पर उसका प्रभाव

१) स्नायविक-संस्थान—यदि ओषजन हीनता बहुत शीघ्रता से होती है जैसेकि यदि सहसा वायुयान वायु-मंडल के ऊँचे स्तरों में पहुँच जाये अथवा कोई व्यक्ति ऐसे अन्धे कुयें में उतर जाये जिसमें ओषजन हो ही न—ऐसी अवस्थाओं में वह व्यक्ति सहसा मूर्छित हो जायेगा। परन्तु शीघ्र ही शुद्ध वायु अथवा ओषजन मिलने से उसकी मूर्छा भंग हो सकती है।

यदि ओषजन हीनता इतनी शीघ्र न होकर शनैः शनैः विक-

सित होती है तो स्नायविक-संस्थान से सम्बन्ध रखने वाले निम्न लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रभावित व्यक्ति की दशा कुछ-कुछ शराबी की दशा से मिलती सी हो जाती है। सिर में दर्द, सुस्ती, गिरी हुई सी तबियत, और चक्कर आदि आने लगते हैं। वह व्यक्ति उत्तेजित भी हो सकता है। उसका अपने ऊपर से नियंत्रण जाता रहता है। उसकी मानसिक अवस्था बहुत बदल जाती है, स्मरण शक्ति, एकाग्र चित्तता और समझने की शक्ति का लोप हो जाता है। परन्तु फिर भी वह व्यक्ति अपने आप को पूर्ण स्वस्थ समझता है और सोचता है कि जो कुछ वह करता है ठीक ही है।

उसकी चेतन शक्ति का भी ह्रास हो चलता है। उसे दर्द आदि की अनुभूति अब इतनी आसानी से नहीं होती जितनी कि एक स्वस्थ व्यक्ति को। मांसपेशियां बहुत कमज़ोर हो जाती हैं और वह शीघ्र ही थकान महसूस करने लगता है।

(२) पाचन-संस्थान—जी मतली हुआ करता है। भूख कम हो जाती है और बहुधा वमन (क़ै) भी होता है। यह लक्षण पर्वत यात्रा करने वाले अधिक ऊँचाई पर पहुँचने पर अनुभव कर सकते हैं।

(३) रक्त-संस्थान—प्रथम तो हृदय की स्पन्दन गति तीव्र हो जाती है जिससे कि हृदय अब पहले की अपेक्षा प्रति मिनट अधिक रक्त हमारे शारीरिक तंतुओं को पम्प करने लगता है। रक्त अधिक मात्रा में शरीर के आवश्यक अङ्गों में पहुँच कर ओषजन की कमी को दूर करने का प्रयत्न करता है। इसी प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप रक्त में उपस्थित लाल कणों की संख्या एवं 'हीमोग्लोबिन' के परिमाण में भी वृद्धि हो सकती है।

यदि रक्त पूर्णतया शुद्ध नहीं होने पाता तो ऐसी दशा में त्वचा

एवं श्लैष्मिक कलाओं तथा नाखूनों आदि का रंग कुछ नीला सा हो जाता है।

(४) सांस लेने की गति में भी वृद्धि हो जाती है परन्तु प्रारम्भ में बहुत हल्की सांस ही ली जाती है—गहरी नहीं।

यदि ओषजन हीनता धीरे-धीरे हो और बहुत अधिक परिमाण में न हो तो प्रभावित व्यक्ति शनैः शनैः उसका आदी हो जाता है। उसके शरीर में कुछ ऐसे परिवर्तन होने लगते हैं जिससे कि उसके तंतुओं को आवश्यक मात्रा में ओषजन फिर मिलने लगती है। रक्त में लाल कणों की संख्या बहुत बढ़ जाती है, 'हीमोग्लोबिन' की मात्रा में भी वृद्धि होती है और इस भाँति रक्त की ओषजन विलीन करने की शक्ति पहले से कहीं अधिक हो जाती है।

फेफड़ों का विस्तार बढ़ जाता है। उनकी श्लैष्मिक कला पहले से पतली हो जाती है और इस भाँति वायवीय आदान-प्रदान पहले की अपेक्षा अब अधिक सुगमता से होने लगता है।

अब हम वायु की आवश्यकता, उसके महत्व एवं उसकी हीनता जनित दशा तथा उसके कारणों से पूर्णतया परिचित हो गये हैं। यह भी पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि किस भाँति वायु, जल एवं भोजन के अन्य मूल अवयवों की अपेक्षा हमारे आहार का एक अधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग है।

प्रकाश

भोजन के विभिन्न मूल अवयवों का विस्तृत विवेचन हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। प्रोटीन, वसा, कर्बोज, खनिज, विटामिन, जल और वायु के अतिरिक्त एक और भी वस्तु हमारे जीवन के लिये इतनी ही आवश्यक है। यद्यपि 'भोजन' की परिभाषा की स्थूल दृष्टि से हम उसे इस शब्द के अन्तर्गत नहीं रख सकते, तो भी उसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

यहाँ हमारा संकेत 'प्रकाश' की ओर है। प्रकाश से हमारा अभिप्राय सूर्य की किरणों से है। सूर्य प्राणीमात्र के लिये आवश्यक है। मनुष्य तो इसके बिना स्वस्थ रह ही नहीं सकता। सूर्य की महत्ता का अनुभव प्राचीन भारत के आर्यों ने किया था और उनकी आदि पुस्तक (वेदों) में स्थान-स्थान पर इसके गुण गाये हैं।

सूर्य के प्रकाश में जीवन है, अन्धकार में मृत्यु, इसे आर्यगण भलीभाँति जानते थे।

> 'यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
> तदेव मन्ये ऽहं ज्येष्ठं, तदुनात्येति कश्चन॥
>
> (अथर्व १०-८-१६)

'अर्थात्—सूर्य का जहाँ उदय होता है और जहाँ जाकर अस्त होता है, इतना स्थान निवासार्थ श्रेष्ठ है। इसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता।

वेदों में सूर्य को स्थावर एवं जंगम दोनो जगत् के आत्मा के रूप में समझा गया है—

'सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च'

(ऋ० १-१-१५)

सूर्य रश्मियों की रोगोत्पादक कीटाणुओं को नाश करने की क्षमता की ओर भी संकेत है—

उत पुरस्तात सूर्य एति, विश्व दृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त सर्वाञ्जंभयन, सर्वाश्च यातुधान्यः॥"

(ऋ० २-१-५-१६१)

अर्थात्, 'पूर्वकी दिशा से उदित होता हुआ यह सूर्य हजारों अदृश्य रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश करता हुआ तथा हिंसक जानवरों की गति रोकता हुआ आ रहा है।'

'उद्यत्यसौ सूर्यः, पुरु विश्वानि जुर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो, विश्व दृष्टो अदृष्टहा॥'

अर्थात, 'सूर्य बड़ी संख्या में विषों को नाश करते हुये उदित होता है। सर्वदर्शी हानिकारक सैकड़ों अदृश्य जीवाणु के नाश करने और जीवों के मंगल के लिये आदित्य उदित होते हैं।'

आज भी हिन्दुओं के घरों में 'सूर्य' की पूजा होती है। हमने इसे 'भगवान्' शब्द से अलंकृत किया है।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में सूर्य की महत्ता को उचित स्थान दिया गया था।

सूर्य का प्रकाश हमारे लिये निम्न दृष्टियों से उपयोगी है—

१) सूर्य रश्मियों की उपस्थिति में बहुत से रोगोत्पादक

कीटाणुओं की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। प्राणीवर्ग द्वारा निष्कासित मल पदार्थों को निरापद बनाने में सूर्य का भाग है।

२) वनस्पति जगत् के लिये भी सूर्य उतना ही आवश्यक है जितना हमारे लिये। सूर्य रश्मियों की उपस्थिति से ही पेड़-पौधों में उपस्थित 'क्लोरोफ़िल' नामक पदार्थ का निर्माण होता है। इस 'क्लोरोफ़िल' के द्वारा ही वायुमंडल में उपस्थित 'कार्बन डाई ऑक्साईड' का उपयोग होता है, और उसके स्थान पर शुद्ध 'ऑक्सीजन' का निष्कासन। और इस भाँति वायुमंडल में 'कार्बन डाई ऑक्साइड' का अनुपात बढ़ने नहीं पाता।

३) हमारे शरीर में सूर्य रश्मियों में उपस्थित पराकासनी किरणों की सहायता से त्वचा के नीचे विटामिन 'डी' स्वतः निर्मित होता है। हमारी त्वचा के नीचे उपस्थित '७ डी हाई-ड्रोक्सी कोलिस्टरोल' नामक पदार्थ पराकासनी किरणों की शक्ति से विटामिन 'डी' में परिवर्तित हो जाता है।

विटामिन 'डी' की कमी से बच्चों में 'आस्थिविकृति' और स्त्रियों में 'मृदुलास्थि' रोग हो जाते हैं। इन रोगों के रोगियों को धूप में बिठाने से लाभ होता है। विशेष विद्युत् यन्त्रों की सहायता से पराकासनी किरणें उत्पन्न करके रोगियों की सफल चिकित्सा की जाती है।

इन पराकासनी किरणों का उपयोग राजयक्ष्मा क रोगियों में भी लाभ के साथ किया गया है।

जब सूर्य की किरणें वायुमंडल में से होती हुई पृथ्वीतल तक आती हैं तो वायुमंडल में उपस्थित धूल, धुयें आदि पदार्थों से 'पराकासनी' किरणें कम हो जाती हैं। इस लिये इस दृष्टि से शहरों की अपेक्षा गाँवों, समुद्रतटीय स्थानों तथा पार्वत्य प्रदेशों की धूप अधिक लाभकारी है।

४) सूर्य की किरणों में उपस्थित 'इन्फ्रा रेड' नामक किरणों का उपयोग भी आधुनिक विद्युत् चिकित्सा में किया जाता है। इन किरणों को विशेष विद्युत् यन्त्रों द्वारा उत्पन्न करके प्रयोग करते हैं।

इसलिये अब यह स्पष्ट है कि प्रकाश हमारे स्वस्थ जीवन के लिये कितनी आवश्यक वस्तु है। सौभाग्यवश, हमारे देश पर सूर्य भगवान् की विशेष कृपा है। परन्तु मूर्खता वश हम इससे लाभ नहीं उठाते। पर्दे की गन्दी प्रथा हमारी माँ बहनों को इनसे दूर रखती है।

प्रकाश की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए निम्न बातें आवश्यक हैं—

१) पर्दा प्रथा का निर्मूलन

२) खुले हुये घर

३) शहरों में बच्चों के खेलने-कूदने के लिये खुले पार्कों की व्यवस्था।

४) बच्चों को आवश्यकता से अधिक कपड़ों से न लादना। सूर्य की महत्ता का अनुभव करके ही प्राचीन भारत के आर्य प्रार्थना करते थे—

'नः सूर्यस्य, संदृशे मायु योथाः।'

(ऋ०-२-३३-१)

अर्थात, 'सूर्य-प्रकाश से हमारा कभी वियोग न होवे।'

आहार-पथ

मनुष्य शरीर को हम एक बड़े राज्य के समान मान सकते हैं। जिस भांति राज्य के अन्तर्गत विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बहुत से विभाग होते हैं और वे सब विभाग एक दूसरे का सहयोग करते हुए उस राज्य की बागडोर सुव्यवस्थित रखते हैं इसी भांति हमारे शरीर में भी विभिन्न कार्यों के प्रतिपादन के लिये अलग-अलग विभाग हैं। इन विभागों को हम संस्थान कहते हैं जैसे कि अस्थि संस्थान, मांस-संस्थान आदि। इसी भांति शरीर को आवश्यक शक्ति प्रदान करने के लिये भोजन के पक्वीकरण एवं आत्मीकरण के लिये भी एक अलग विभाग है। इसे पोषण संस्थान कहते हैं। इसके लिये हमारे शरीर में मुँह से लेकर मलद्वार तक लगभग ३० फीट लम्बा एक नल है जिसे 'आहार-पथ' कहते हैं। प्रत्येक विभाग अथवा संस्थान के भिन्न भिन्न भाग एक दूसरे के सहयोग से उस विभाग का कार्य पूरा करते हैं। इसी भांति शरीर के सब संस्थान भी एक दूसरे के साथ इसी प्रकार के सहयोग द्वारा हमारे शरीर की मशीन अथवा राज्य को सुव्यवस्थित रूप में चलाते रहते हैं। अब हम आहार-पथ के विभिन्न भागों एवं उनके कार्यों को देखेंगे जिससे कि हम पोषण-संस्थान के कार्यों को सुविधा पूर्वक समझ सकें।

भोजन पक्वीकरण एवं आत्मीकरण के लिये आहार-पथ में आता है। आहार-पथ एक सरल नली के आकार से (जैसा कि निम्न प्राणियों में पाया जाता है) लेकर स्तनधारी जीवों में पाये जाने वाले आकार का हो सकता है। मनुष्य में आहार-पथ मुँह से प्रारम्भ होकर मलद्वार तक लगभग २९-३० फीट लम्बा एक मांसल नल होता है जिसके भीतर की ओर श्लैष्मिक कला बिछी रहती है। मुँह, कंठ, अन्न-प्रणाली और गुदा के निचले भाग की श्लैष्मिक कला पर्तदार और मोटी होती है। आहार-पथ के शेष भागों की श्लैष्मिक कला के कोष स्तम्भाकार होते हैं।

आहार-पथ सब जगह एक सा नहीं होता जैसाकि चित्र देखने से विदित होगा। कहीं ये पतला नल के आकार का है तो कहीं फैल कर थैली के समान हो जाता है और कहीं गुड़ी मुड़ी दशा में रहता है। आहार-पथ के कुछ भाग (मुँह, कंठ और अन्न-प्रणाली) ग्रीवा और वक्ष में वक्ष-उदर मध्यस्थ पेशी के ऊपर रहते हैं। शेषभाग उपर्युक्त पेशी के नीचे उदर में रहता है।

भोजन के पचने के लिए कई पाचक रसों की आवश्यकता होती है। ये रस विभिन्न ग्रन्थियों में बनते हैं जिन्हें पाचक ग्रन्थियाँ कहते हैं। ये पाचक ग्रन्थियाँ आहार-पथ से सम्बन्धित होती हैं और दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जो आहार-पथ के विभिन्न भागों की श्लैष्मिक कला में स्थित होती हैं। ये अणु-वीक्ष्य हैं। दूसरी प्रकार की ग्रन्थियाँ बड़ी होती हैं और आहार-पथ से अलग स्थित होती हैं। उनमें निर्मित होने वाले पाचक रस नलियों के द्वारा आहार-पथ में पहुँचते हैं। दूसरे प्रकार की छै ग्रन्थियाँ मुँह में होती हैं जिन्हें लाला-ग्रन्थियाँ कहते हैं। और दो बड़ी ग्रन्थियाँ यकृत और क्लोम उदर में होती हैं।
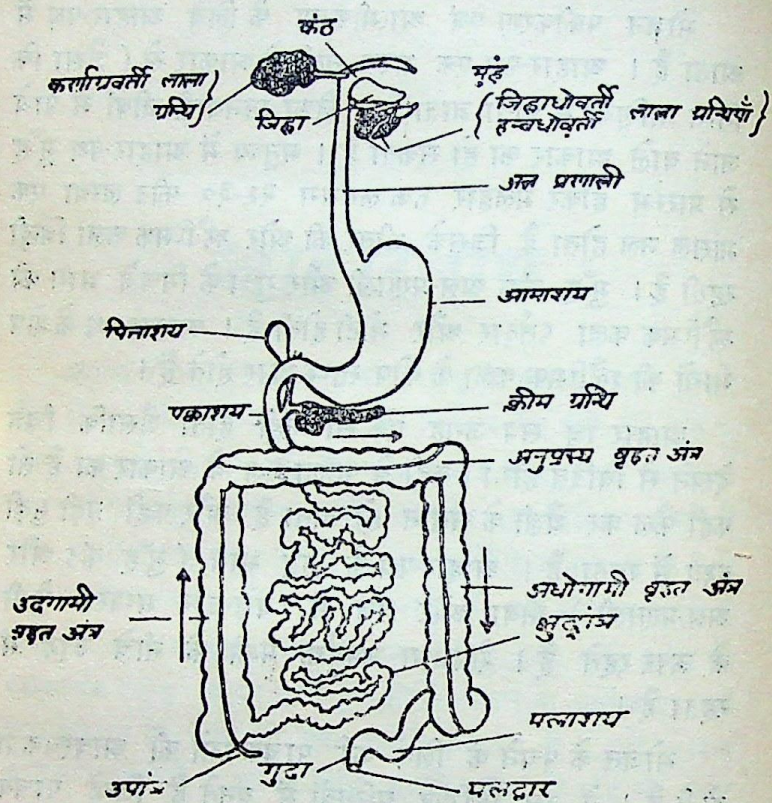
चित्र सं०—२२

आहार-पथ तथा पोषण-संस्थान के विभिन्न भाग

आहार-पथ के भाग

१) मुँह
२) कंठ
३) अन्नप्रणाली
४) आमाशय
५) क्षुद्रांत्र
६) वृहत्अंत्र

(१) मुँह—जैसाकि पहले कहा जा चुका है आहार पथ के दो सिरे हैं। ऊपर वाले छोर को मुँह कहते हैं। मुँह से भोजन आहार-पथ में प्रवेश करता है। मुँह में दाँत और जिह्वा होते हैं। मुँह में छै पाचक ग्रन्थियों की नलियाँ आकर खुलती हैं जिनके द्वारा उनमें निर्मित 'लाला' नामक पाचक-रस मुँह में आता है। इन ग्रन्थियों में से तीन दाँयीं ओर और तीन बाँयीं ओर होती हैं। हर तरफ एक ग्रन्थि कान के सामने और नीचे की ओर, एक जीभ के नीचे ठीक सामने की ओर और, एक निम्न हनु के नीचे उससे ढकी हुई होती है। इन्हें क्रमशः कर्णाग्रवर्ती, जिह्वाधोवर्ती और हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि कहते हैं।

मुँह के कार्य:—

१) भोजन का आहार-पथ में प्रवेश
२) दाँतों द्वारा भोजन का चबाया जाना और लाला मिश्रण।
३) गिलन क्रिया—चबाये गये और लाला मिश्रित भोजन के गस्से को जिह्वा की विचित्र गतियों द्वारा पीछे की ओर ढकेल कर कंठ में से अन्न-प्रणाली में पहुँचाना।

(२) कंठ—मुँह के पिछले भाग को कंठ कहते हैं। यहाँ से दो नलियों का प्रारम्भ होता है। एक तो श्वास-प्रणाली अथवा स्वर-यंत्र और दूसरी अन्न-प्रणाली। कंठ के ऊपर के भाग में कोमल तालु के ऊपर नासिका के पिछले छिद्र होते हैं। अन्न प्रणाली स्वर यंत्र के पीछे होती है। जब हम ग्रास निगलते हैं तो

चित्र सं०—२३ और २४
श्वास-पथ और गिलन-क्रिया

उसे अन्न-प्रणाली में पहुँचने के लिये स्वभावतः स्वर-यंत्र के ऊपर होकर जाना पड़ता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऐसा करने में भोजन का ग्रास स्वर-यंत्र में क्यों नहीं चला जाता अथवा भोजन के तरल पदार्थ जैसे दूध आदि नासिका के पिछले छिद्रों में क्यों नहीं प्रवेश कर जाते ?

इसका प्रकृति ने बहुत उत्तम प्रबन्ध किया है। स्वर-यंत्र के ऊपर एक ढक्कन होता है जो कि जिह्वामूल के पास स्वर-यंत्र की अगली दीवाल में लगा होता है। इसे स्वर-यंत्रच्छद कहते हैं। जब हम सांस लेते हैं तो कोमल तालु नीचे की ओर हट जाता है और ये ढक्कन ऊपर की ओर उठ जाता है और स्वर यंत्र के ऊपर नहीं रहता, जिससे कि स्वर यंत्र का छिद्र खुल जाता है। तब वायु नासिका के पिछले छिद्रों में से होती हुई श्वास प्रणाली में चली जाती है। (देखो चित्र सं० २३)

पर जब हम भोजन का ग्रास निगलते हैं तब कोमल तालु ऊपर की ओर उठ कर गले की पिछली दीवाल से जा लगता है और स्वरयंत्र का ढक्कन उसके ऊपर आकर उसके छिद्र को बन्द कर लेता है। इतना ही नहीं मांसपेशियों के सकुंचन के कारण स्वरयंत्र आगे की ओर जिह्वामूल के नीचे सरक आता है। अब न तो भोजन के तरल पदार्थ नासिका के पिछले छिद्रों द्वारा नासिका में ही प्रवेश पा सकते हैं और न भोजन का ग्रास स्वर यंत्र में ही जा सकता है। कंठ से वह अन्न-प्रणाली में प्रवेश करता है और उसमें होता हुआ आमाशय में पहुँच जाता है। (चित्र सं० २४)

(३) **अन्न-प्रणाली**—सरल नली के आकार की होती है। इसका अधिकांश ग्रीवा और वक्ष में रहता है। कुछ थोड़ा सा भाग उदर में होता है। उदर में रहने वाला भाग १ इंच से अधिक लम्बा नहीं होता। अन्न-प्रणाली ग्रीवा में कंठ से प्रारम्भ

हो कर वक्ष में प्रवेश करती है। ग्रीवा में इसके सामने स्वर यंत्र और पीछे कशेरुकायें होती हैं। वक्ष में भी पीछे की ओर करोरुकायें और सामने ऊपर टेंटुवा और नीचे हृदय होता है। अपने निचले मार्ग में ये कुछ बांई ओर मुड़ जाती है और वक्ष के १० वें या ११ वें करोरुका के सामने वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी में एक छेद में से होती हुई आमाशय से जा मिलती है।

इसके भीतर की ओर श्लैष्मिक कला बिछी रहती है। इसमें ग्रन्थियाँ नहीं होतीं और लम्बाई के रुख सलवटें पड़ी रहती हैं।

अन्न-प्रणाली में भोजन का न तो पक्वीकरण ही होता है और न आत्मीकरण। अन्न-प्रणाली का कार्य केवल भोजन को कंठ से लेकर आमाशय में पहुँचा देना ही है।

(४) **आमाशय**—आहार-पथ का सबसे फैला हुआ चौड़ा भाग है। अन्न-प्रणाली से भोजन आमाशय में आता है और यहीं भोजन की प्रारम्भिक पाचन क्रिया का आरम्भ होता है। जीवित दशा में इसका आकार सदैव एक सा नहीं रहता। भोजन के उपरान्त अथवा जब इसमें गैस भर जाती है यह फूली हुई मशक के समान हो जाता है। खाली होने पर फिर नल्याकार हो जाता है। (चित्र सं० २५)

आमाशय की लम्बाई सामान्यतः १२-१३ इंच और चौड़ाई ४ इंच के लगभग होती है। आमाशय से सम्बन्धित दो छिद्र हैं जिन्हें हम आमाशय के दो द्वार कह सकते हैं। एक तो जहाँ अन्न-प्रणाली आमाशय से आ कर मिलती है और जिससे भोजन आमाशय में प्रवेश करता है। इसे हृदय द्वार कहते हैं। दूसरा छिद्र जहाँ आमाशय का दक्षिण भाग आंत से मिलता है वहाँ स्थित है। इसे पक्काशयिक द्वार कहते हैं। यहां पर मांस की तह बहुत मोटी होती है और उसके संकोच से यह द्वार बन्द रहता है। जब
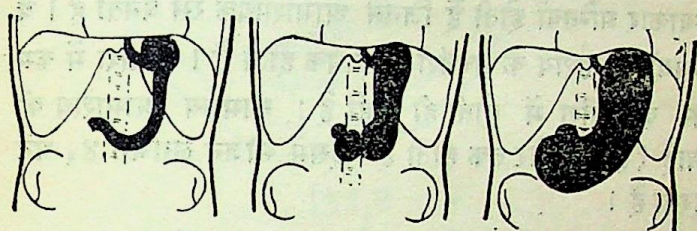
क ख ग

क—ख़ाली आमाशय (नल्याकार)

ख—भोजन के बाद। दक्षिणांश में गति के कारण पड़ी हुई सिकुड़नें।

ग—पूरा भरा हुआ आमाशय (फूली हुई मशक के समान)

चित्र संख्या—२५

'आहार-रस' आमाशय से आँतों में जाने को होता है तो मांस-पेशियों के विसार से यह द्वार खुल जाता है।

आमाशय की भीतरी सतह पर श्लैष्मिक कला बिछी रहती है। इसमें लम्बाई के रुख़ सलवटें पड़ी रहती हैं। इसमें बहुत सी नल्याकार ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें आमाशयिक रस बनता है। ये ग्रन्थियाँ आमाशय के मध्यांश में अधिक होती हैं। ऊर्ध्वांश में कम और दक्षिणांश में होती ही नहीं हैं। सामान्य आमाशय की समाई १½ से २ सेर तक होती है। इसमें भोजन लगभग ४½ घंटे ठहरता है।

हृदय द्वार—यहाँ अन्न-प्रणाली का अन्त होकर आमाशय प्रारम्भ होता है और इसमें से भोजन आमाशय में प्रवेश पाता है। यहाँ मांस की तह काफ़ी मोटी होती है। यह द्वार मांस पेशियों के संकोच से बन्द रहता है और विसार से खुल जाता है। आमाशय के खाली होने पर यह द्वार सामान्यतः खुला रहता है। भरे होने पर बन्द हो जाता है।

ऊर्ध्वांश—बांई ओर के चौड़े और फूले हुये गोल भाग को ऊर्ध्वांश कहते हैं। यह भाग भंडार का काम देता है। इसमें गति बहुत कम होती है। जठर-रस भी अधिक नहीं बनता।

मध्यांश—यह आमाशय का मुख्य भाग है। यह ऊर्ध्वांश और दक्षिणांश के बीच में होता है। इस भाग में अम्ल-रस बनता है और गति भी अधिक होती है।

दक्षिणांश—दाहिनी ओर वाले तंग भाग को दक्षिणांश कहते हैं। इस भाग में मांस बहुत अधिक होता है। इसलिये इसमें गतियां भी बहुत अधिक होती हैं जिससे कि इसमें पहुँचा हुआ भोजन खूब मथा जाता है। मध्यांश की अपेक्षा इस भाग
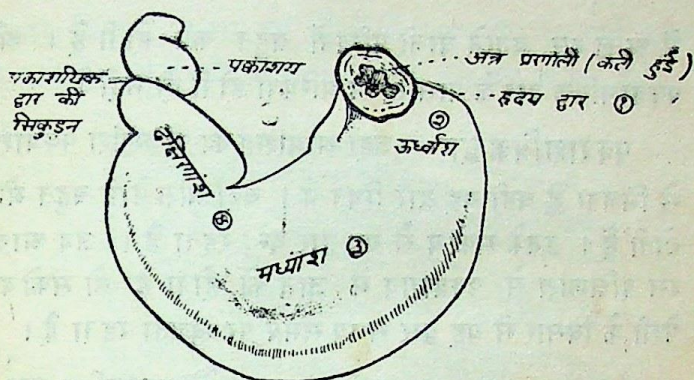
चित्र सं—२६

आमाशय और उसके भाग
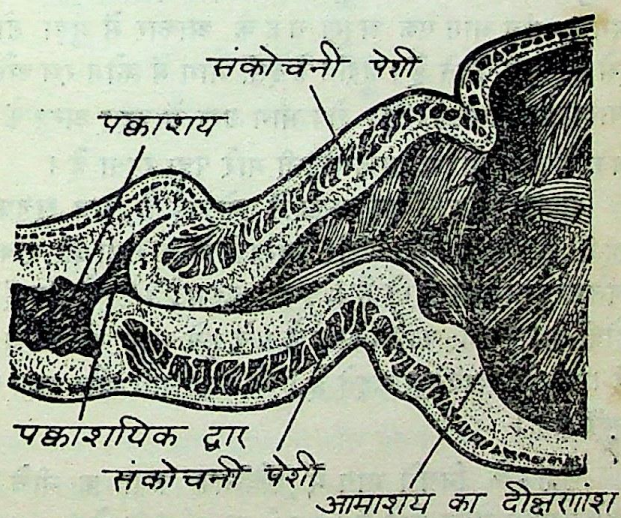
चित्र सं०—२७

आमाशय का दक्षिणांश (कटा हुआ)

में अम्ल रस बनाने वाली ग्रन्थियाँ बहुत कम होती हैं। और पक्वाशयिक द्वार के पास तो ये ग्रन्थियाँ होती ही नहीं।

पक्वाशयिक द्वार—जहाँ आमाशय का दक्षिणांश पक्वाशय से मिलता है वहीं यह द्वार स्थित है। यहाँ मांस-पेशी बहुत मोटी होती हैं। इनके संकोच से यह द्वार बन्द रहता है। जब आहार रस दक्षिणांश से पक्वाशय में जाने को होता है तो संकोचनी पेशी के विसार से यह द्वार समय समय पर खुलता रहता है।

(५) **क्षुद्रांत्र**—यह नली आमाशय के पक्वाशयिक द्वार से प्रारंभ होकर वृहत् अंत्र के प्रारंभ तक लगभग २२ फीट लम्बी होती है। व्यास में यह वृहत् अंत्र से छोटी होती है (लगभग १½") परन्तु लम्बाई में उससे चौगुनी होती है। इसके प्रारम्भ का लगभग १० इंच भाग एक अपूर्ण चक्र के आकार में मुड़ा होता है, इसे पक्वाशय कहते हैं। क्षुद्रांत्र के इसी भाग में क्लोम रस और पित्त आहार रस में मिलते हैं। शेष भाग उदर में वृहत् अन्त्र के अपूर्ण चक्र के बीच सांप की तरह गेंडुली मारे पड़ा रहता है।

क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला में गोलाई के रुख सलवटें पड़ी रहती हैं। इसकी नल्याकार ग्रन्थियों में उंगली की शकल के अनेक सूक्ष्म उभार होते हैं। इनकी लम्बाई १/४८से१/८ इंच तक होती है। इनका कार्य भोजन के पचे हुये भाग को ग्रहण करना है। इनके ग्राहकांकुर कहते हैं। ये आमाशय और वृहत् अंत्र में नहीं होते।

क्षुद्रांत्र के निचले भाग में श्लैष्मिक कला के नीचे २० ३० विशेष ग्रन्थि समूह होते हैं। इनकी लम्बाई १/२ से ४ इंच तक हो सकती है और चौड़ाई लगभग १ २ इंच। इनमें ग्राहकांकुर नहीं पाये जाते। इन्हें 'पायर' ग्रन्थि समूह कहते हैं। मंथर ज्वर

अथवा मियादी बुखार एवं आँतों के क्षय रोग में इनमें जख्म हो जाते हैं। क्षुद्रांत्र में भोजन लगभग ५ घंटे तक ठहरता है।
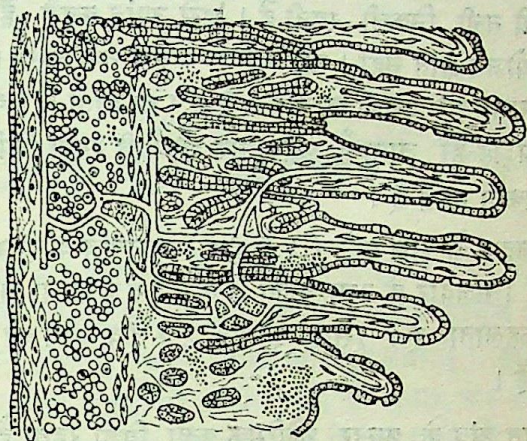
चित्र सं०—२८

क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला में उपस्थित ग्राहकांकुर

(६) वृहतअंत्र—यह लगभग ५ फीट लम्बा नल होता है। क्षुद्रांत्र के अंत से प्रारम्भ होकर यह मलद्वार तक क्षुद्रांत्र की गेंडलियों के चारों ओर एक अपूर्ण चक्र सा बनाये पड़ा रहता है। इस अपूर्ण चक्र को बनाने वाले मुख्य तीन भाग हैं जिन्हें कि क्रमशः उद्गामी; अनुप्रस्थ एवं अधोगामी वृहतअंत्र कहते हैं।

जहां क्षुद्रांत्र का अन्त होता है और वृहत अन्त्र प्रारम्भ होता है वहां दो किवाड़ों वाला एक कपाट होता है। यह श्लैष्मिक कला से निर्मित होता है। इसका कार्य आहार-रस को वृहत्अन्त्र से क्षुद्रांत्र में जाने से रोकना है। इस भांति आहार-रस एक ही दिशा में केवल क्षुद्रांत्र से वृहत अन्त्र में ही जा सकता है। वृहत्अंत्र के

प्रारम्भ का भाग एक थैली के आकार का होता है जैसाकि चित्र देखने से विदित होगा। यहां इस भाग से एक ओर को एक छोटी सी नली निकली रहती है। इसे उपांत्र कहते हैं। इसका ठीक प्रयोजन ज्ञात नहीं। यह १/२ से ८ इंच तक लम्बी हो सकती है पर सामान्यतः इसकी लम्बाई २-३ इंच ही होती है। कभी कभी इसमें प्रदाह हो जाता है और तब शीघ्र ही शल्य चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

मलद्वार के पास वाले (५-६ इंच) वृहत्अंत्र के दो भाग माने जाते हैं। मलद्वार के पास वाला १ से १½ इंच लम्बा भाग जोकि गुदा कहलाता है। इससे ऊपर के ४-५ इंच भाग को मलाशय कहते हैं।

वृहत् अंत्र के अन्दर श्लैष्मिक कला बिछी रहती है। इसमें क्षुद्रांत्र के समान ग्राहकांकुर एवं विशेष ग्रंथिसमूह नहीं पाये जाते। वृहत् अंत्र की श्लैष्मिक कला में उपस्थित ग्रन्थियाँ कोई विशेष पाचक-रस नहीं बनातीं। वृहत्अंत्र में आये हुये 'आहाररस' का अधिकांश जल श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त में मिल जाता है और भोजन के बचे हुये पदार्थ वृहत्अंत्र की कृमिवत् गति के कारण मलाशय की ओर पहुँचते हैं। मलाशय से ये समय समय पर विष्ठा रूप में मलद्वार में से शरीर के बाहर निकाल दिये जाते हैं।

अब हम अपने शरीर की मशीन के एक विशेष विभाग के कार्यकर्ताओं से परिचित हो गये हैं। इसलिये अब हमें इस विभाग के अन्यान्य कार्यों एवं क्रिया शैली को समझने में कोई विशेष कठिनाई न होगी।

भोजन की पाचन-क्रिया

यह तो हम जान गये हैं कि भोजन से हमारे शरीर को शक्ति और गर्मी मिलती है। हमारे अवयवों की क्षतिपूर्ति हो कर उनकी वृद्धि होती है एवं वे स्वस्थ और पुष्ट होते हैं। इस भाँति हमारे शरीर की मशीन को अपने कार्यों को सुचारु रूप से करते रहने के लिये आवश्यक शक्ति भोजन से मिलती है और उसी के द्वारा इस मशीन के कल पुर्जे भी दुरुस्त रहते हैं।

परन्तु यदि हम अपने शरीर के किसी अंग में एक छेद कर लें और रोज़ उस छेद में भोजन डाल दिया करें तो क्या वह भोजन अपने निर्दिष्ट कार्यों का सम्पादन कर सकेगा? क्या वह इस मशीन को वह शक्ति दे सकेगा कि ये अपने सब काम ठीक ठीक करती रहे? क्या इस मशीन के सब कल पुर्जे दुरुस्त रहेंगे?

कदापि नहीं! भोजन से सार पदार्थ ग्रहण करने और उनके प्रयोग के लिये हमारे शरीर को एक निश्चित क्रिया का प्रतिपादन करना पड़ता है। इसी को हम पाचन क्रिया कहते हैं। हमारे शरीर के विशिष्ट जान्तव पदार्थों के निर्माण के लिये भोजन के जान्तव पदार्थों का विश्लेषण होना आवश्यक है। यही पाचन-क्रिया का मूल उद्देश्य है।

यदि कोई मनुष्य अपने पुराने मकान के स्थान पर एक नया भवन बनाना चाहता हो तो ऐसा करने से पहले यह आवश्यक है कि उस पुराने मकान को बिलकुल गिरा दिया जाय। और उसका सारा मसाला ईंट, पत्थर, गर्डर आदि अलग-अलग छांट लिये जायें, और फिर इन्हीं ईंटों, पत्थरों आदि से नये भवन का निर्माण हो। बिलकुल यही कार्य पाचन क्रिया का है। हमारे शरीर के ग्रहण योग्य पदार्थों के निर्माण के लिये पहले भोजन का विश्लेषण होता है। उसके कठिन यौगिक पदार्थ, सरल छोटे अणु वाले यौगिक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। और फिर इन सरल यौगिक पदार्थों के लीन होकर रक्त में मिलने के बाद इन्हीं के पारस्परिक संयोग से हमारे शरीर के विशिष्ट जान्तव पदार्थों का निर्माण होता है।

हमारे शरीर का वह भाग जो इस विशेष क्रिया का प्रतिपादन करता है 'पाचन संस्थान' कहलाता है। इसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। इसके सब भाग एक ही कार्य नहीं करते। प्रत्येक भाग का अपना एक विशेष कार्य है और वह केवल उसी का सम्पादन समुचित रूप से करता है।

भोजन के पक्कीकरण के लिये एक और विशेष पदार्थवर्ग है जोकि बहुत आवश्यक है। ये हैं पाचक-रस। 'आहार-पथ' तो केवल वह उपयुक्त स्थान प्रदान करता है जहाँ कि पाचन-रसों के द्वारा भोजन का ठीक ठीक पक्कीकरण हो सके और तत्पश्चात् पचा हुआ भोजन लीन होकर उसका आत्मीकरण हो सके एवं सारहीन अपच पदार्थों को विष्टा रूप में बाहर निकाला जा सके।

भोजन के भिन्न-भिन्न मूल अवयवों को विभिन्न प्रकार के पाचक रसों की आवश्यकता है। ये पाचक-रस विशेष प्रकार की

ग्रन्थियों में बनते हैं। ये पाचक ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं। इसका संकेत पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। अणुवीक्ष्य पाचक ग्रन्थियाँ आहार पथ की श्लैष्मिक कला में रहती हैं। ये भाँति-भाँति की होती हैं। दूसरी तरह की पाचक ग्रन्थियाँ वे हैं जोकि आहार-पथ से अलग स्थित हैं और वहीं अपने पाचक रसों को तैयार करती हैं। इनसे विशेष नलियाँ चलकर अन्न मार्ग में विभिन्न स्थानों पर खुलती हैं, ताकि इनके द्वारा निर्मित रस समय-समय पर आहार-पथ में आवश्यकतानुसार पहुँच कर अपने कार्यों का सम्पादन कर सकें।

दूसरी तरह की ग्रन्थियों में से छै-ग्रन्थियाँ मुँह में होती हैं। दो कानों के पास, दो जीभ के नीचे ठीक सामने की ओर और दो निम्न हनु के नीचे उससे ढकी हुई। इस भाँति कुल ये छै ग्रन्थियाँ होती हैं—तीन बायीं ओर तथा तीन दायीं ओर। यह ग्रन्थियाँ थूक अथवा लार जिसे 'लाला रस' भी कहते हैं बनाती हैं। इन्हें लाला ग्रन्थियाँ कहते हैं। इनके नाम क्रमशः कर्णाग्रवर्ती, जिह्वाधोवर्ती तथा हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि हैं।

दूसरी ही तरह की दो बड़ी ग्रन्थियाँ उदर में रहती हैं। एक यकृत अथवा जिगर कहलाती है दूसरी को क्लोम ग्रन्थि कहते हैं। इन दोनों ग्रन्थियों की नलियाँ छोटी आँत में खुलती हैं जिससे कि इनके पाचक रस क्षुद्रांत्र में पहुँच कर भोजन में मिलते हैं। इन पाचक-रसों को क्रमशः पित्त एवं क्लोम रस कहते हैं।

यह तो हुआ बहुत ही संक्षेप में पाचक ग्रन्थियों एवं उनके द्वारा तैयार किये हुये पाचक रसों का थोड़ा सा परिचय। अब हम यह देखेंगे कि खाना मुहँ में पहुँच कर किस भाँति इन भिन्न भिन्न पाचक-रसों द्वारा पचता है और अन्त में अपचनीय पदार्थ
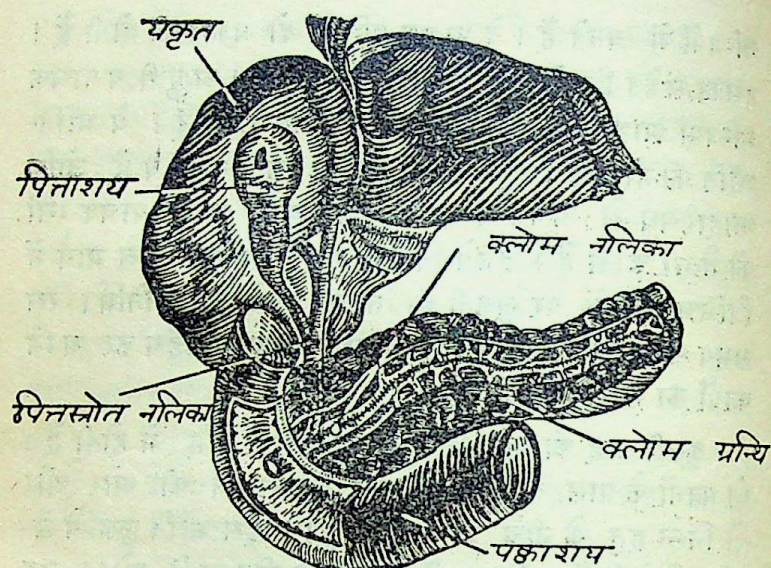
चित्र सं०—२६
यकृत तथा क्लोम ग्रन्थि

किस प्रकार विष्टा रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। तथा इन भिन्न-भिन्न पाचक-रसों का भोजन के किस अंग पर कैसा प्रभाव होता है और उनके ठीक असर के लिये क्या और कौन बातें जरूरी हैं।

लाला— सबसे प्रथम भोजन मुहँ में पहुँच कर दाँतों से चबाया जाता है। ऐसा करने से उसमें थूक (लाला) मिल जाता है इसलिये भोजन चबाने की क्रिया बहुत अच्छी तरह करनी चाहिये ताकि उसमें लाला उचित परिमाण में मिल जाये। आपने बहुधा यह अनुभव किया होगा कि यदि आप किसी श्वेतसारीय (कर्बोज) वस्तु को बहुत देर तक मुँह में चबायें तो उसमें एक प्रकार की मिठास सी आ जाती है.यह 'लाला' में उपस्थित एक

रस विशेष के कारण होता है। इसे 'टायलिन एनजाइम' कहते हैं। इसका यह एक विशेष गुण है कि यह श्वेतसार को शर्करा में परिवर्तित करता है। और इस भाँति यह एक अघुलनशील, कठिन यौगिक पदार्थ को—मीठे, घुलनशील, सरल एवं छोटे अणु-वाले यौगिक शर्करा में परिवर्तित कर देता है जो कि आहार-पथ से आसानी से लीन होकर रक्त में मिलती है और फिर उसका आत्मीकरण होता है। भोजन के अन्य अवयवों जैसेकि प्रोटीन, वसा आदि पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। श्वेतसार को शर्करा में परिवर्तित करने के साथ ही साथ लार से एक दूसरा बड़ा लाभ यह है कि भोजन के ग्रास में लार मिल जाने से गिलन क्रिया (निगलने) में बहुत आसानी होती है।

'लाला' में उपस्थित इस श्वेतसार परिवर्तक पदार्थ का ठीक ठीक असर उस भोजन पर होता है जिसकी प्रतिक्रिया या तो क्षारीय हो अथवा न क्षारीय और न अम्ल। अधिक अम्लयश के होने से यह पदार्थ शिथिल हो जाता है। इसलिये रोटी आदि पदार्थों के साथ सिरके सरीखी अम्लीय वस्तुओं का अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये। ४०° सेंटीग्रेड—तापमान पर (जो कि लग-भग हमारे शरीर के तापमान के ही बराबर है) इसका असर सब से अच्छा होता है।

मुहँ से निगले जाने के पश्चात् भोजन अन्न-प्रणाली में से होता हुआ बाँये ओर के छिद्र से आमाशय के ऊर्ध्वांश में प्रवेश करता है।

पेट में भोजन पहुँचने पर वहाँ आमाशयिक अथवा जठर-रस का बनना प्रारम्भ होता है जोकि अम्लीय होता है। परन्तु लग-भग आधे घंटे तक आमाशय में पहुँचने के बाद भी 'लाला' का श्वेतसार परिवर्तक पदार्थ अपना कार्य करता रहता है। परन्तु जब

जठर-रस भोजन में मिलने लगता है तब भोजन की प्रतिक्रिया अम्लीय होती जाती है और श्वेतसार परिवर्तक पदार्थ का कार्य शिथिल पड़ जाता है। जठर-रस आमाशय की भीतरी सतह से ठीक उसी प्रकार निकलता है जैसेकि हमारे शरीर से स्वदेकण।

भोजन आमाशय में पहुँच कर उसके ऊर्ध्वांश में एकत्र होता जाता है। फिर आमाशय की मांस पेशियों के बार बार सिकुड़ने से भोजन का थोड़ा थोड़ा भाग आमाशय के दक्षिणांश में पहुँचता है। वहाँ पहुँचने पर उसमें जठर-रस खूब मिलता है और आमाशय के उस भाग की गति बहुत अधिक होने के कारण वह वहाँ पर खूब मथा जाता है। तब तक आमाशय का दाहिनी ओर वाला द्वार बिलकुल बंद रहता है। जब इस प्रकार के मंथन और जठर-रस के मिश्रण से भोजन बिलकुल पतला हो जाता है तब पक्वाशयिक द्वार का छिद्र मांसपेशियों के विसार से स्वतः खुल जाता है और यह पतला अम्लीय प्रतिक्रिया वाला भोजन (आहार-रस) आमाशय से पक्वाशय अथवा क्षुद्रांत्र में प्रवेश करता है।

जहाँ तक होता है आमाशय भोजन को बिलकुल पतला कर के ही आँतों में भेजता है। इसीलिये भोजन जितना ही कम चबाया जायेगा आमाशय को उतना ही अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। इसलिये भोजन निगलने से पहले उसे भली प्रकार चबाना चाहिये।

इस भांति आमाशय में आया हुआ सारा भोजन धीरे धीरे कर के बिलकुल पतला होकर आँतों में पहुँच जाता है। इस पतले भोजन को 'आहार रस' कहते हैं। सामान्य भोजन लगभग ४॥ घण्टे तक आमाशय में ठहरता है।

आमाशयिक अथवा जठर-रस—भोजन आमाशय में

आने पर जठर-रस से मिलता है। अब हमें यह देखना है कि यह जठर-रस भोजन के साथ मिल कर उसमें क्या परिवर्तन करता है। इससे पहले इस रस के विषय में भी थोड़ी सी जानकारी प्राप्त कर लेना उचित होगा।

जठर-रस आमाशय की श्लैष्मिक कला में स्थित ग्रन्थियों में बनता है। इसकी प्रतिक्रिया अम्लीय है। यह अम्लीय प्रति-क्रिया इसमें उपस्थित 'हाइड्रोक्लोरिक' अम्ल के कारण होती है। इस अम्ल के अतिरिक्त जठर-रस में 'पेप्सीन' और 'रेनेट' नामक दो विशेष पदार्थ और भी होते है जिनके कार्य आगे चल कर बताये जायेंगे। जठर-रस में कई प्रकार के 'लवण' भी होते हैं। आमाशयिक रस एक पतला और कुछ-कुछ विवर्ण वर्ण का तरल पदार्थ होता है। इसका रासायनिक विश्लेषण लगभग इस भाँति है :—

जल	६६.४४ प्रतिशत
पेप्सीन आदि	०.३२ प्रतिशत
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	०.०२ ०.२ प्रतिशत
क्लोराइड लवण	०.०३ ०.३ प्रतिशत
स्फुर के संयोगिक अन्य जान्तव अम्ल	लगभग ०.०१ प्रतिशत

जठर-रस के कार्य

(१) हाइड्रोक्लोरिक अम्ल—की उपस्थिति के कारण भोजन के साथ पेट में पहुँचने वाले कीटाणुओं में से अधिकांश मर जाते हैं। और इस भांति हम बहुत से रोगों से बचे रहते हैं और साथ ही साथ पेट में उपस्थित भोजन में सड़ान आदि नहीं हो पाती।

(२) प्रोटीन विश्लेषण—भोजन में उपस्थित प्रोटीनों के कठिन यौगिक अणु जब तक सरल पदार्थों में परिणत न हों तब तक ये अन्न मार्ग से पच कर रक्त में नहीं पहुँच सकते और न शरीर इनसे कोई लाभ ही उठा सकता है।

यह विश्लेषण क्रिया जठर-रस में उपस्थित 'पेप्सीन' नामक एक विशेष पदार्थ प्रतिपादित करता है। 'पेप्सीन' के उक्त कार्य के लिये अम्लीय प्रतिक्रिया आवश्यक है और इसलिये जठर रस में 'हाइड्रोक्लोरिक' अम्ल की उपस्थिति वांछनीय है। 'पेप्सीन' द्वारा प्रतिपादित इस विश्लेषण क्रिया से प्रोटीनों से जो नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सरल और घुलनशील होते हैं। उनमें से कुछ तो आमाशय में ही लीन होकर रक्त में मिल जाते हैं। परन्तु सामान्यतः भोजन में उपस्थित सब प्रोटीनों का पूर्ण विश्लेषण आमाशय में नहीं हो पाता और यह अधपची प्रोटीनें एवं उनसे उत्पन्न हुये अन्य पदार्थ आँतों में पहुँच कर अन्य पाचक रसों के संयोग में आती हैं जहाँ उनके अधिक प्रबल-प्रोटीन विश्लेषक पदार्थ भोजन में विहित प्रोटीनों का पूर्णरूपेण विश्लेषण कर उसे ऐसे नये पदार्थों में परिणत कर देते हैं जोकि पूरी तरह से सुगमता से लीन होकर रक्त में विलीन हो सकें।

(३) दुग्ध पर असर—जठर-रस में 'पेप्सीन' के अतिरिक्त 'रेनिन' अथवा 'रेनेट' नामक एक विशेष पदार्थ और होता है। यह पदार्थ दूध में उपस्थित 'केसोनोजन' नामक घुलनशील प्रोटीन को अघुलनशील 'केसीन' में परिवर्तित कर देता है और तब यह 'केसीन' दुग्ध में उपस्थित कैलशियम से संयुक्त होकर 'कैलशियम केसीनेट' बना लेता है। इस भाँति पेट में पहुँचा हुआ दूध जम जाता है।

इस क्रिया के पश्चात् यह जमा हुआ दूध भी आमाशय में

अन्य भोजनों के समान ही पचता है। इस भाँति दूध का पेट में पहुँच कर जम जाना एक स्वाभाविक क्रिया है, अस्वाभाविक नहीं, जैसाकि साधारण लोगों का भ्रम है।

(४) जठर-रस श्वेतसारीय पदार्थों पर कोई असर नहीं करता। परन्तु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति के कारण 'गन्ने की शक्कर' (साधारण शक्कर जो हम व्यवहार करते हैं,) अन्य सरल शर्कराओं (ग्ल्यूकोज़ एवं माल्टोज़) में परिवर्तित हो जाती है।

(५) भोजन में उपस्थित वसा पेट में पहुँच कर शरीर की गर्मी से घुल जाती है। आमाशय में जब वसा अथवा चर्बी के कोष जठर-रस के संयोग में आते हैं तो उसमें उपस्थित 'अम्ल-पेप्सीन' के कारण इन कोषों का प्रोटीन-मय आवरण घुल जाता है और वसा के छोटे-छोटे बिन्दुक स्वतंत्र हो जाते हैं। जठर-रस कुछ अंशों में वसा पर रासायनिक क्रिया भी करता है और सम्भवतः उसे कुछ सरल पदार्थों में परिवर्तित कर देता है।

(६) जठर-रस में उपस्थित सहजात अथवा आन्तरिक रक्तोत्पादक अंश, हमारे भोजन में उपस्थित बाह्य रक्तोत्पादक अंश के साथ मिल कर रक्त के लाल कणों के प्रतिपालन और अभिवृद्धि के लिए आवश्यक एक विशेष रक्त प्रतिपालक पदार्थ का निर्माण करता है। यदि आन्तरिक एवं बाह्य रक्तोत्पादक अंशों में से किसी एक की भी कमी हो तो रक्त प्रतिपालक पदार्थ का निर्माण न हो सकेगा। परिणामतः रक्त के लाल कणों के विकास और उनकी अभिवृद्धि में व्याघात होगा और वह व्यक्ति 'रक्त प्रतिपालक-पदार्थ-हीनता-जनित' रक्ताल्पता से ग्रसित हो जायेगा।

आमाशय में रुकने के बाद आहार-रस पक्वाशयिक द्वार में से होकर छोटी आंत में पहुँचता है। इस समय इसकी प्रति-

क्रिया अम्लीय होती है। इसमें प्रोटीन विश्लेषण के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुये नये, घुलनशील, सरल यौगिक एवं प्रोटीन-मय कोषावरण के बाहर निकले हुये स्वतंत्र वसा बिन्दुक होते हैं। 'लाला' की रासायनिक क्रिया से श्वेतसार का भी कुछ अंश सरल शर्कराओं में परिवर्तित हो चुकता है। जल और लवण ज्यों के त्यों रहते हैं।

अब हमें यह देखना है कि क्षुद्रांत्र में पहुँच कर इस 'आहार-रस' में और क्या-क्या परिवर्तन होते हैं? और इसका अन्तिम परिणाम क्या होता है?

छोटी आँतों में पहुँचने पर 'आहार-रस' का पाचन यकृत और क्लोम ग्रन्थियों द्वारा बनाये हुये पाचक-रसों और स्वयं क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला में स्थित अणुवीक्ष्य पाचक ग्रन्थियों द्वारा निर्मित पाचक-रसों के द्वारा होना प्रारम्भ होता है। इन तीनों पाचक रसों को क्रमशः पित्त, क्लोम रस एवं क्षुद्रांत्रीय पाचक रस कहते हैं। निम्न प्रकरण में इन विभिन्न पाचक-रसों की रासायनिक क्रियाओं और क्षुद्रांत्र में पहुँचा हुआ 'आहार रस' किस भांति आत्मीकरण के योग्य हो जाता है इसका वर्णन किया गया है।

क्लोम-रस—यह एक तरल एवं स्वच्छ क्षारीय द्रव है। इसके परिमाणात्मक रासायनिक विश्लेषण का परिणाम निम्न है—

जल	९७.६ प्रतिशत
जान्तव पदार्थ	१.८ प्रतिशत
लवण	०.६ प्रतिशत

क्लोम-रस में उपस्थित जान्तव-पदार्थों में कुछ मात्रा प्रोटीन आदि की होती है, शेष सब विशेष पाचक पदार्थ होते हैं जिन्हें अंग्रेजी में 'एनज़ाइम' कहते हैं। इन जान्तव पदार्थों के अतिरिक्त

क्लोम-रस में बहुत से लवण आदि भी होते हैं। इनमें से मुख्य तथा सबसे अधिक परिमाण में उपस्थित साधारण नमक अथवा सैन्धव होता है। इसके अतिरिक्त 'पोटेशियम क्लोराइड' 'सोडियम' 'कैलशियम' और 'मैगनीशियम' के स्फुर संयोगिक भी होते हैं। क्लोम-रस की क्षारीय प्रतिक्रिया मुख्यतः 'सोडियम बाईकार्बोनेट' एवं स्फुर संयोगिकों की उपस्थिति के कारण होती है।

क्लोम-रस में निम्न 'एनज़ाइम' होते हैं और उनके कार्य इस भाँति हैं :—

(१) **'ट्रिप्सिन'**—यह प्रोटीन विश्लेषक एक विशेष पदार्थ है। इसका कार्य भी जठर रस के 'पेप्सीन' के समान ही है। परन्तु 'ट्रिप्सिन' क्षारीय प्रतिक्रिया के माध्यम में ही कार्य कर सकता है जब कि 'पेप्सीन' के लिये अम्ल की उपस्थिति आवश्यक है। साथ ही साथ 'ट्रिप्सिन' 'पेप्सीन' से कहीं अधिक प्रबल प्रोटीन विश्लेषक पदार्थ है। यह प्रोटीन के विश्लेषण को शीघ्रता पूर्वक एवं पूर्णरूपेण करता है। यह अपना कार्य भोजन पर 'पेप्सीन' का प्रभाव हो जाने के उपरान्त अधिक सुगमता से करता है।

जब तक कि क्लोम रस क्षुद्रांत्रीय रस के संयोग में नहीं आता तब तक 'ट्रिप्सिन' अपना कार्य नहीं कर सकता। क्षुद्रांत्रीय रस के ही प्रभाव से क्लोम-रस में उपस्थित 'ट्रिप्सिनोत्पादक' पदार्थ क्रियाशील हो जाता है और तभी 'ट्रिप्सिन' अपना प्रोटीन विश्लेषक कार्य कर सकता है।

(२) **'एमाइलेस'**—यह 'लाला' के श्वेतसारीय परिवर्तक पदार्थ के समान ही क्लोम-रस में उपस्थित एक विशेष जांतव पदार्थ है। यह श्वेतसारीय पदार्थों को सरल शर्कराओं में परिवर्तित कर देता है। लाला के श्वेतसारीय परिवर्तक पदार्थ की अपेक्षा यह

अधिक प्रबल होता है। और बिना उबाले हुये श्वेतसार कणों पर भी असर कर सकता है।

(३) 'लाइपेस'—यह वसा-विश्लेषक पदार्थ है। जठर रस द्वारा अपने कोष के खोलों से स्वतंत्र किये गये वसा बिन्दुकों के कुछ अंश को यह अपनी रासायनिक क्रिया द्वारा 'ग्लिसरीन' एवं कुछ विशेष प्रकार के वसा-अम्लों में परिवर्तित कर देता है। ये वसा-अम्ल पित्त में उपस्थित क्षारों के संयोग से साबुन के यौगिकों में परिवर्तित हो जाते हैं। और तब ये यौगिक पित्त की सहायता से शेष वसा बिन्दुकों को इतने छोटे-छोटे कणों में विभाजित कर देते हैं कि वे इतने छोटे हो जाते हैं जैसेकि दूध में होते हैं। इस दशा में उनका आत्मीकरण सुगमता से हो सकता है। इस क्रिया को अंग्रेज़ी में 'इमल्सीफ़िकेशन' कहते हैं।

(४) कुछ विशेषज्ञों का मत है कि क्लोमरस में भी दुग्धको जमाने वाला पदार्थ होता है जो कि अपनी रासायनिक क्रिया में जठर रस के 'रेनिन' से भिन्न होता है। परन्तु क्लोम-रस के इस पदार्थ को अपना दूध जमाने का कार्य बहुत ही कम—लगभग नहीं के बराबर करना पड़ता है क्योंकि दुग्ध इसके संयोग में आने से पहले ही आमाशयिक रस के 'रेनिन' के प्रभाव से जम कर पचना प्रारम्भ हो जाता है।

क्षुद्रांत्रीय पाचक-रस

क्षारीय प्रतिक्रिया वाला यह पाचक-रस क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला में स्थित पाचक ग्रन्थियों में बनता है। इसमें उपस्थित मुख्य पदार्थ और उनके कार्य इस भाँति हैं:—

(१) क्लोमोत्तेजक पदार्थ—छोटी आंत से यह पदार्थ

रक्त में विलीन होकर क्लोम ग्रन्थि में पहुँचता है, तब क्लोम ग्रन्थि बहुत शीघ्रता से अपने पाचक-रस का निर्माण करने लगती है।

(२) क्षुद्रांत्रीय रस जब क्लोम-रस के संसर्ग में आता है तब वह क्लोम-रस के 'ट्रिप्सिनोत्पादक' पदार्थ को क्रियाशील कर देता है। तत्पश्चात् 'ट्रिप्सिन' अपना प्रोटीन-विश्लेषक कार्य प्रारम्भ करता है।

(३) **'इरेप्सिन'**—यह पदार्थ जठर एवं क्लोम-रस के 'पेप्सिन' एवं 'ट्रिप्सिन' नामक पदार्थों द्वारा किये गये प्रोटीन के विश्लेषण को पूर्ण करता है। अर्थात् उनके विश्लेषण से उत्पन्न हुये पदार्थों का और आगे विश्लेषण करता है। और अन्ततः प्रोटीन को आत्मीकरण योग्य सरल यौगिक अणुओं में परिवर्तित कर देता है।

(४) **शर्करा-परिवर्तक पदार्थ**—जोकि भोजन अथवा 'आहार रस' में उपस्थित विभिन्न प्रकार की शर्कराओं को अन्ततः 'ग्ल्यूकोज़' में परिवर्तित करते हैं।

पित्त

यह पाचक रस यकृत में बनता है और पित्ताशय में एकत्र होता है। यह एक पीला, लाली लिये हुये कुछ भूरा सा अथवा कुछ पीलापन लिये हुये हरे से वर्ण का क्षारीय प्रतिक्रिया का तरल पदार्थ है। पित्त में कई प्रकार के लवण होते हैं।

पित्त के कार्य—पित्त रस अकेला पाचन-क्रिया में बहुत ही कम भाग लेता है। क्लोम-रस के संसर्ग में आकर पित्त उसके प्रत्येक गुण एवं कार्य को द्विगुणित कर देता है। विशेष कर वसा के पाचन में तो पित्त बहुत अधिक सहायता करता है।

आमाशय से क्षुद्रांत्र में आये हुये आहार-रस की आम्ला-

यश पित्त एवं क्लोम-रस की क्षारीय प्रतिक्रिया के कारण जाती रहती है। और तब आहार रस क्षारीय प्रतिक्रिया का होकर क्लोम रस के प्रभाव और कार्यों के अधिक अनुकूल हो जाता है।

हम पहले ही बता आये हैं कि पित्त वसा के 'इमलसीफ़िकेशन' के लिये ज़रूरी है और इस भाँति ये वसा के पक्वीकरण एवं आत्मीकरण के लिये भी बहुत आवश्यक है। जब पित्त कम बनता है अथवा आँतों में नहीं पहुँच पाता तब वसा की पाचनक्रिया में व्याघात होता है और उसका अधिकांश विष्टा के साथ बाहर निकल जाता है।

इन सब कार्यों के अतिरिक्त पित्त की उपस्थिति से आंतों में सड़ान नहीं होने पाती। इसकी कमी से सड़ान पैदा हो जाती है और मल बहुत ही दुर्गन्धियुक्त होता है।

अब हम यह जान गये हैं कि जो भोजन हम खाते हैं उस पर विभिन्न पाचक-रसों की क्या क्रिया होती है। और किस भाँति एक नये भव्य भवन के निर्माण के लिये पुराने खंडहरों को तोड़ा फोड़ा जाता है अर्थात् किस भाँति हमारे शरीर के विशिष्ट जान्तव पदार्थों के निर्माण के लिये भोजन के जान्तव पदार्थों का विश्लेषण होता है और वे आत्मीकरण योग्य हो जाते हैं।

अब अगले प्रकरण में हम भोजन की आत्मीकरण क्रिया का वर्णन करेंगे।

भोजन का आत्मीकरण

पिछले प्रकरण में हम यह देख चुके हैं कि किस भाँति पाचन क्रिया और विभिन्न पाचक-रसों के द्वारा भोजन के जान्तव पदार्थों के कठिन अणु वाले यौगिकों का विश्लेषण हो कर सरल अणु वाले यौगिक बनते हैं। परन्तु अब भी ये सरल अणु वाले यौगिक शरीर के बाहर ही हैं। शरीर के विशिष्ट जान्तव पदार्थों के निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि भोजन के ये सरल अणु वाले यौगिक आहार-पथ में से लीन होकर रक्त में विलीन हों। यदि किसी कारणवश ऐसा नहीं होता और पचे हुये पदार्थ ज्यों के त्यों मल रूप में बाहर निकल जाते हैं तो भोजन से हमारे शरीर को कोई लाभ नहीं पहुँचता।

भोजन के विश्लेषण किये गये सरल अणु वाले इन यौगिकों का श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त में पहुँचने की क्रिया को आत्मीकरण कहते हैं। आत्मीकरण से पहले भोजन का पक्कीकरण होना आवश्यक है अर्थात् वह क्रिया जिससे कि भोजन के अवयव आत्मीकरण के योग्य हो जाते हैं। इसे हम पिछले प्रकरण में बहुत कुछ विस्तार पूर्वक लिख चुके हैं। अब हम संक्षेप में भोजन के विभिन्न मूल अवयवों का आत्मीकरण एवं पक्कीकरण होते समय की उनकी विभिन्न दशाओं का उल्लेख करेंगे।

इससे पहले यहाँ यह जान लेना अच्छा होगा कि आहार पथ के किन-किन भागों से भोजन का आत्मीकरण हो सकता है और किनसे नहीं। मुख, कंठ और अन्न-प्रणाली की श्लैष्मिक कला की मोटाई और भोजन का आहार-पथ के इन भागों में से शीघ्रता के साथ निकल जाने के कारण इन भागों में भोजन का आत्मीकरण बिलकुल भी नहीं होता। आमाशय में आत्मीकरण किंचित मात्र ही होता है। जल का आत्मीकरण भी आमाशय में नहीं होता परन्तु अल्कोहल का आत्मीकरण आमाशय में कुछ अंश तक हो जाता है। लवण और शकर भी आमाशय में बहुत ही कठिनाई के साथ विलीन होते हैं—जब तक कि वे भोजन में बहुत अधिक परिमाण में न उपस्थित हों जैसा कि साधारणतया सामान्य भोजन में नहीं होता।

आत्मीकरण के लिये सब से मुख्य स्थान क्षुद्रांत्र है। इसकी श्लैष्मिक कला में उपस्थित ग्राहकांकुरों के कारण क्षुद्रांत्र में आत्मीकरण करने वाले धरातल का क्षेत्रफल बहुत बढ़ जाता है जिससे कि छोटी आँत के इस कार्य में बहुत सुविधा और शीघ्रता होती है। क्षुद्रांत्र का बाहरी क्षेत्रफल केवल १.५ वर्ग मीटर होता है जब कि अन्दर की श्लैष्मिक कला का क्षेत्रफल ग्राहकांकुरों द्वारा बढ़ कर ४२ वर्ग मीटर हो जाता है। जब तक 'आहार-रस' बड़ी आँत के प्रारम्भ में पहुँचता है उसके पचे हुये भाग के अधिकांश का आत्मीकरण लगभग पूर्ण हो जाता है। बड़ी आँत में भी आत्मीकरण होता है परन्तु केवल जल के अंश का।

भोजन के मूल अवयवों का आत्मीकरण

कर्बोज—हर प्रकार के कर्बोज पदार्थ आत्मीकरण होने से पहले विभिन्न पाचक-रसों की क्रियाओं के द्वारा सरल

अणु वाली शर्कराओं (अधिकतर द्राक्षौज) में परिवर्तित हो जाते हैं।

जैसाकि हम पहले कह चुके हैं कि मुहँ, गले, अन्नप्रणाली एवं आमाशय में आत्मीकरण नहीं होता। क्षुद्रांत्र में ये सरल शर्करायें (अधिकतर द्राक्षौज एवं कुछ अन्य शर्करायें 'फ्रुक्टोज' आदि भी) सहज-सहज श्लैष्मिक कला में से लीन होकर रक्त केशिकाओं में पहुँच कर रक्त में विलीन हो जाती हैं।

तत्पश्चात् ये शर्करायें यकृत में पहुँचती हैं, जहाँ पर कि अन्य सब प्रकार की सरल शर्करायें भी अन्ततः द्राक्षौज में परिणत कर दी जाती हैं क्योंकि कर्बोज रक्त में केवल द्राक्षौज के रूप में ही रह सकता है और इसी अवस्था में शरीर के काम भी आता है। शरीर को जितनी शकर की आवश्यकता होती है केवल उतनी ही रक्त में रह पाती है। शेष को यकृत वहीं रोक कर 'ग्लाइकोजन' नामक पदार्थ में परिवर्तित कर अपने कोषों में जमा करता जाता है। जब शरीर को अतिरिक्त शकर की आवश्यकता होती है तब यकृत के कोष फिर इसी 'ग्लाइकोजन' को द्राक्षौज में परिणत कर रक्त में मिला देते हैं और इस भाँति यह आवश्यकतानुसार काम आ सकती है।

भोजन में उपस्थित कर्बोज का वह भाग जो सरल शर्कराओं में परिवर्तित नहीं हो पाता अर्थात् जिसका पक्वीकरण नहीं होता उसका आत्मीकरण भी नहीं हो पाता और वह वैसा का ही वैसा विष्ठा के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है।

यदि कोई इतनी अधिक शर्करा और श्वेतसारीय पदार्थों को खाने लगे कि यकृत इस शकर के इतने अधिक परिमाण को रोकने में असमर्थ हो तो रक्त में शरीर की आवश्यकता से अधिक

द्राक्षौज जाने लगता है। पर रक्त अपने निश्चित परिमाण से अधिक शर्करा नहीं रख सकता इसलिये ऐसी दशा में शर्करा की इस अधिक मात्रा को गुर्दे मूत्र द्वारा शरीर के बाहर निकालने लगते हैं। इसे 'मधुमेह' कहते हैं। 'मधुमेह' भोजन में अधिक शर्करा होने के कारण होता है। इसमें कर्बोज के आत्मीकरण में कोई व्याघात नहीं होता।

कुछ व्यक्तियों में क्लोम ग्रंथि में उपस्थित विशेष प्रणाली-विहीन ग्रन्थियों के क्षय हो जाने से उनमें निर्मित होने वाला अन्तःस्रावी पदार्थ 'इनसुलिन' नहीं बनता। 'इनसुलिन' कर्बोज के आत्मीकरण के लिये आवश्यक है। इसकी कमी से कर्बोज का पूर्ण आत्मीकरण नहीं होने पाता और शरीर उसका उपयोग नहीं कर सकता। इस दशा में भी मूत्र में शर्करा निकलने लगती है। यह 'मधुमेह' गम्भीर रोग है। इसे 'डायबिटीज़ मैलाइटस' कहते हैं। इसमें रोगी निरन्तर कृश होता जाता है। बहुमूत्र, बहु-बुभुक्षा और बहु-पिपासा इसके प्रधान लक्षण हैं।

'इनसुलिन' के इंजेक्शन से तत्काल और प्रत्यक्ष लाभ होता है।

प्रोटीन—पाचन-क्रिया के सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि किस भाँति अघुलनशील कठिन प्रोटीनें विभिन्न पाचक-रसों के द्वारा सरल अणु वाले यौगिकों में परिवर्तित हो जाती हैं। इस विश्लेषण के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुये सरल प्रोटीन यौगिक घुलनशील होते हैं और क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला के ग्राहकांकुरों द्वारा आसानी से रक्त में पहुँच जाते हैं। प्रोटीन के विश्लेषण के प्रारम्भ से अन्त तक हुये रासायनिक रूपान्तर निम्न हैं :—
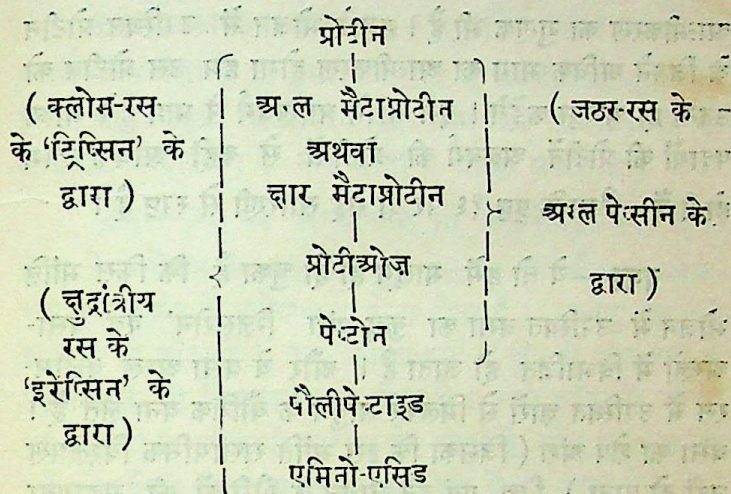
सब से अन्त में उत्पन्न हुये ये सरल यौगिक (एमिनो एसिड) सहज-सहज ग्राहकांकुरों द्वारा रक्त केशिकाओं में चले जाते हैं और रक्त में विलीन होकर हमारे शरीर के काम आते हैं। फिर इन्हीं से हमारे शरीर की विशिष्ट प्रोटीनों का निर्माण होता है। अथवा यों कहिये कि टूटे-फूटे खँडहरों (भोजन) से निकले इन ईंट-पत्थरों से एक नये भव्य भवन (हमारे शरीर के तन्तु) का निर्माण होता है।

भोजन की प्रोटीनों का जो अंश इस भांति परिवर्तित नहीं हो पाता वह ज्यों का त्यों विष्ठा के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। हम पिछले पृष्ठों में प्रोटीन का वर्णन करते समय उसके विशेष स्थल पर प्रथम अथवा उत्तम एवं द्वितीय अथवा निकृष्ट श्रेणी में विभाजित कर चुके हैं। हमारे इस प्रकार के श्रेणी विभाजन का एक आधार प्रोटीन के

आत्मीकरण का गुणक भी है। हमारे भोजन में उपस्थित प्रोटीन के जितने अधिक भाग का आत्मीकरण होगा हम उस प्रोटीन को उतना ही अच्छा कहेंगे। इस भाँति प्राणिवर्ग से प्राप्त हुये भोज्य पदार्थों की प्रोटीनें अन्नवर्ग की प्रोटीनों से कहीं अधिक उत्तम होती हैं—जैसाकि पृष्ठ १६ पर दी गई सारिणी से स्पष्ट है।

वसा—ये तो हमें मालूम ही हो चुका है कि किस भांति भोजन में उपस्थित वसा का कुछ अंश 'ग्लिसरीन' एवं वसा-अम्लों में विभाजित हो जाता है। और ये वसा-अम्ल क्लोम-रस में उपस्थित क्षारों से मिलकर साबुन के यौगिक बना लेते हैं। वसा का शेष अंश (जिसका कि इस भांति रासायनिक विश्लेषण नहीं हो पाता) पित्त एवं इन साबुन के यौगिकों की सहायता से बहुत ही छोटे-छोटे बिन्दुकों अथवा कणों में विभाजित होकर एक दूधिया घोल के समान हो जाता है। ये बिन्दुक इतने छोटे होते हैं कि इनका आत्मीकरण सुगमता से हो सकता है। तत्पश्चात् इस भांति उत्पन्न 'ग्लिसरीन' वसा अम्ल, साबुनीय यौगिक एवं वसा के दूधिया घोल के छोटे-छोटे बिन्दुक क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला में उपस्थित ग्राहकांकुरों की लसीका केशिकाओं द्वारा लसीका में पहुँच जाते हैं। इस लसीका का रंग वसा के नन्हे-नन्हे बिन्दुकों के कारण दूधिया सा होता है। लसीका में उपस्थित यह वसा अन्ततः रक्त में पहुँच जाती है।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि वसा के आत्मीकरण के लिये क्लोम-रस एवं पित्त दोनों ही बहुत आवश्यक हैं। क्लोम ग्रन्थि अथवा यकृत के रोगों में जब ये पाचक-रस ठीक तरह से नहीं बन पाते तब वसा का ठीक-ठीक आत्मीकरण नही हो पाता और उसका अधिकांश विष्टा के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है।

लवणों का आत्मीकरण—घुलनशील खनिज लवणों का अपरिवर्तित दशा में ही मुख्यतः क्षुद्रांत्र में आत्मीकरण होता है। इनका थोड़ा बहुत आत्मीकरण मुहँ, गला और अन्नप्रणाली को छोड़ कर आहार-पथ के शेष भागों में भी हो सकता है।

जल—जल का आत्मीकरण भी अपरिवर्तित दशा में ही होता है। भोजन के साथ मिले हुये जल का आत्मीकरण आमाशय एवं क्षुद्रांत्र में अपेक्षाकृत थोड़ा होता है। मुख्यतः यह बड़ी आँत में ही होता है। जब 'आहार-रस' क्षुद्रांत्र से वृहत् अंत्र में पहुँचता है तो बिलकुल पतला होता है। बड़ी आँत में पहुँचने पर जल का आत्मीकरण प्रारम्भ हो जाता है और मलाशय तक पहुँचते-पहुँचते विष्ठा अपने सामान्य रूप में आ जाता है।

भोजन के अतिरिक्त पिया जाने वाला जल शीघ्र ही आमाशय को छोड़ देता है और क्षुद्रांत्र में पहुँच जाता है। इसलिये आमाशय में इसका आत्मीकरण बिलकुल नहीं होता। क्षुद्रांत्र एवं वृहत् अंत्र की श्लैष्मिक कला में से होकर जल, रक्त और लसीका में मिल जाता है।

अल्कोहल—जल में घुलनशील होने के कारण इसका आत्मीकरण बहुत शीघ्रता से होता है। इसका अत्मीकरण आमा-में होता है और पिये जाने के बाद थोड़ी सी ही देर में रक्त में लीन होकर स्नायविक संस्थान के केन्द्रीय भागों (मस्तिष्क और सुषुम्ना) पर अपना प्रभाव दिखाता है—जिनका विस्तृत वर्णन 'मद्यपान' के प्रकरण में किया गया है। अल्कोहल का आत्मीकरण इतनी शीघ्रता से होता है कि पिये जाने के लगभग दस मिनट बाद ही उस व्यक्ति के रक्त में इसकी उपस्थिति सिद्ध की जा सकती है।

इस भाँति अब यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि किस भाँति हमारे शरीर की मशीन भोजन से अपने लिये आवश्यक कोयला-पानी ले लेती है और बची हुई राख तथा अन्य व्यर्थ की वस्तुओं को मल रूप में शरीर से बाहर निकालती रहती है।

मल या विष्टा—भोजन के आत्मीकरण के उपरान्त बचे हुये पदार्थ वृहत् अन्त्र से आकर मलाशय में एकत्र होते हैं। और नियमित रूप से विष्टा के रूप में हमारे शरीर से निकलते रहते हैं। सामान्यतः एक स्वस्थ मनुष्य दिन में दो बार शौच को जाता है। परन्तु यह कोई निश्चित नियम नहीं है और मुख्यतः व्यक्ति विशेष की दैनिक आदत पर निर्भर करता है। कुछ व्यक्ति दिन में केवल एक ही बार, कुछ दो बार, कुछ तीन चार या इससे भी अधिक दफे शौच को जाते हैं। कुछ हर तीसरे दिन और कोई कोई तो सप्ताह में एक, दो ही बार जाते देखे गये हैं। इन सबके लिये अपनी अपनी आदत के अनुसार उपर्युक्त सब समय ठीक हैं। पर जहाँ भी अपनी आदत से परे जरा भी व्यतिक्रम हुआ कि वह व्यक्ति इसके प्रभावों एवं लक्षणों से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। कुछ अंशों तक शौच की दैनिक संख्या व्यक्ति विशेष के भोजन और उसकी मात्रा पर भी निर्भर करती है। अन्नाहारी तथा मांसाहारी व्यक्तियों का काम एक ही समय शौच जाने से चल जाता है। साधारण मिश्रित आहार पर निर्भर रहने वाले सामान्यतः दिन में दो बार जाते हैं। तथा बहुत अधिक आहार करने वाले अथवा पाचन-संस्थान में कोई गड़बड़ी हो जाने पर एक दिन में तीन, चार या इस से भी अधिक बार जाने की आवश्यकता पड़ती है। हिन्दी में एक कहावत भी है—

'एक बार योगी; दो बार भोगी और तीन बार रोगी।'

मनुष्य के मल में निम्न पदार्थ होते हैं :—

(१) जल

(२) भोजन का अ ाक (बिना पचा हुआ) एवं अनात्मीकृत अंश

(३) शाकों और फलों के रेशे आदि जो हज़म नहीं हो सकते।

(४) आँतों में (२) और (३) के अंशों में सड़ान के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुये पदार्थ।

(५) अनेक प्रकार के अणुवीक्ष्य कीटाणु।

(६) पाचक-रसों के भाग।

(७) आहार-पथ की श्लैष्मिक कला के गिरे हुये कोष।

मल का रंग भोजन पर निर्भर करता है। शाकाहारियों का मल कुछ पीला सा होता है। अधिक वसा के होने पर भी मल का रंग ऐसा ही होता है। मांसाहारियों का मल भूरे वर्ण का होता है। पित्त की उपस्थिति में भी मल का रंग भूरा हो जाता है। बीमारी की दशा में इनसे भिन्न रंग हो सकते हैं। यदि आहार-पथ के किसी ऊपरी भाग से खून निकलता हो तो मल का रंग काला हो जाता है। और यदि मलाशय अथवा मलद्वार के पथ के किसी भाग से खून आता हो तो खून का रंग चमकीला लाल होता है।

मल का परिमाण भी भोजन पर निर्भर करता है। मांसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारियों का मल मात्रा में अधिक होता है।

पशुजन्य खाद्य पदार्थ

दुग्ध, अँडे एवं मांस

हम भोजन के मूल अवयवों के विषय में भली भाँति जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। हमारे खाद्य पदार्थों में उपस्थित मुख्य मूल अवयव-प्रोटीन, कर्बोज, वसा, विटामिन, खनिज लवण एवं जल हैं। हम यह भी जान चुके हैं कि भोजन में उपस्थित कौन कौन मूल अवयव भोजन की आवश्यकता के किन विशेष अँगों की पूर्ति करते हैं। अब यह उचित होगा कि इन बातों को ध्यान में रखते हुये हम अपने दैनिक व्यवहार में आने वाले कुछ खाद्य पदार्थों का स्वतंत्र रूप से निरीक्षण करें और यह भी मालूम करने का प्रयत्न करें कि कौन कौन खाद्य पदार्थ भोजन की आवश्यकता के किन अंगों की पूर्ति के लिये श्रेष्ठतर हैं। इस प्रकरण में हम केवल प्राणिवर्ग से प्राप्त होने वाले खाद्य पदार्थों की ही विवेचना करेंगे। इनमें से मुख्य दूध तथा दूध से तैयार किये गये अन्य पदार्थ जैसे, दही, मट्ठा, पनीर, मक्खन और घी आदि तथा अंडा एवं मांस हैं। यह वर्ग प्रथम श्रेणी की प्रोटीन प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है।

दूध

सभी स्तनधारी प्राणियों के बच्चों का जन्म से लेकर कुछ निश्चित समय तक उनकी माँ का दूध ही एकमात्र अवलम्ब रहता है। और मनुष्य के लिये तो जीवनपर्यन्त दूध (अन्य पालतू प्राणियों से प्राप्त) एक मुख्य भोजन है।

पूर्ण आहार—जन्म के उपरान्त कुछ काल तक बचा केवल माँ के दूध पर ही आश्रित रहता है, इसलिये स्वभावतः प्रकृति की ओर से ही दूध में वे सब मूल अवयव उतने (उचित) परिमाण में उपस्थित होते हैं; कि जिनकी और जितने की उस बच्चे को आवश्यकता होती है। बच्चे को संवर्धनीय, पोषक, शक्ति उत्पादक एवं रक्षात्मक सभी प्रकार के तत्व दूध से ही प्राप्त होते हैं। खनिज लवण एवं विटामिन भी दूध में उचित मात्रा तथा अनुपात में होते हैं। इसलिये दूध को हम 'पूर्ण-आहार' कह सकते हैं।

आयुर्वेद साहित्य में दूध को स्निग्ध, ओजवर्द्धक, धातुवर्धक, वृष्य, स्फूर्तिदायक, रसायन, बुद्धिवर्धक एवं बलकारक आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। बच्चों के लिये तो यह जीवन ही माना गया है।

यहाँ तक कि इसीलिये हमारे पूर्वजों ने गाय को 'गऊ माता' के आदरणीय सम्बोधन से अलंकृत किया है और गाय की सेवा रक्षा एवं पालन को 'धर्म' के अन्तर्गत शामिल कर लिया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन समय में भी जबकि 'आहार-विज्ञान' के आज के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का पता भी न था, दूध को हमारे भोजन में कितना महत्व दिया जाता था।

इतना होने पर भी दूध बाल्यावस्था में जैसा पूर्ण आहार

का काम देता है, वैसा अधिक आयु के व्यक्तियों के लिये नहीं। युवा मनुष्य के लिये हम दूध को पूर्ण भोजन नहीं कह सकते। क्यों कि वयस्क मनुष्य को उचित परिमाण में 'कार्बन' एवं 'नाइट्रोजन' की प्राप्ति के लिये बहुत अधिक दूध की आवश्यकता होगी, जिस का पीना कठिन है। केवल दूध के बल पर ही यदि कोई वयस्क व्यक्ति रहना चाहे तो उसे गाय का दूध लगभग आठ सेर प्रतिदिन पीना पड़ेगा। भैंस का दूध केवल पाँच सेर ही काफी होगा। इसीलिये वयस्क व्यक्तियों के लिये दूध 'पूर्ण आहार' का नाम सार्थक नहीं कर कर सकता।

रासायनिक उपादान—दूध में जल का अंश अधिक होता है—लगभग ८० से ९० प्रतिशत। भैंस के दूध में ८१ प्रतिशत, गो-दुग्ध में ८६-८७ प्रतिशत, स्त्री के दूध में ८८ प्रतिशत, बकरी के दूध में ८७.५४ प्रतिशत एवं गधी के दूध में लगभग ९१.१७ प्रतिशत जल का अंश होता है।

प्रोटीन—लगभग ३ प्रतिशत होती है। स्त्री के दूध में गाय के दूध से प्रोटीन की मात्रा लगभग आधी होती है। विभिन्न पशुओं से प्राप्त दूध में उपस्थित प्रोटीन आदि की मात्रा आगे दी गई तालिका में तुलनार्थ दी गई है। दूध में उपस्थित प्रोटीन प्रथम अथवा उत्तम श्रेणी की होती है। दूध में लगभग वे सभी 'एमिनो-एसिड' जो हमारे शरीर में तन्तु-निर्माण के लिये आवश्यक हैं काफी मात्रा में होते हैं। और साथ ही साथ दूध की प्रोटीन सुगमता से पच जाती है। दूध में उपस्थित प्रोटीन का लगभग ८८—१०० प्रतिशत भाग का पूर्ण आत्मीकरण हो जाता है। इस भाँति हमारे शरीर के लिये प्रथम श्रेणी की प्रोटीन की सुगम उपलब्धि के लिये दूध सर्वश्रेष्ठ आहार है। भोजन में प्रोटीन का क्या महत्व है इसका वर्णन हम पहले ही कर चुके

हैं। प्रोटीन का मुख्य कार्य क्षत-विक्षत तन्तुओं की पूर्ति एवं वृद्धि के लिये नये तन्तु-कोषों का निर्माण है। इस भाँति यह स्पष्ट है कि बढ़ते हुये बच्चों, रोगियों एवं गर्भवती स्त्री के लिये दूध एक अमूल्य आहार है।

वसा—दूध में वसा की मात्रा लगभग ३·५ से ८ प्रतिशत तक हो सकती है। भैंस के दूध में सब से अधिक वसा होती है, गाय के दूध में लगभग उसकी आधी और स्त्री के दूध में उससे थोड़ी सी कम। दूध में यह बहुत ही छोटे छोटे वसा बिन्दुकों के रूप में रहती है जो कि दूध में तैरते रहते हैं। ये वसा बिन्दुक इतने सूक्ष्म होते हैं कि ग्राहकांकुरों द्वारा इनका आत्मीकरण बहुत ही सुगमता से हो जाता है। वसा से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है।

कर्बोज—४ से लेकर ८ प्रतिशत तक हो सकता है। बकरी के दूध में यह लगभग ४·० प्रतिशत, भैंस के दूध में ४·६ प्रतिशत, गाय के दूध में ४·० प्रतिशत एवं स्त्री के दूध में लगभग ७·५ प्रतिशत कर्बोज होता है। दूध में उपस्थित समस्त कर्बोज 'लैक्टोज' नामक शर्करा के रूप में पाया जाता है। इसके ओषजनीकरण से भी शक्ति उत्पन्न होती है।

खनिज—दूध में पाये जाने वाले खनिज लवणों में कैल-शियम एवं फॉसफोरस के संयोगिक मुख्य हैं। ये दोनों खनिज पदार्थ हड्डियों के ठीक ठीक विकास और उनकी अभिवृद्धि के लिये नितान्त आवश्यक हैं। दाँतों के उत्तम विकास के लिये भी कैलशियम आवश्यक है। गर्भवती स्त्री एवं दूध पिलाने वाली माताओं को सामान्य अवस्था से अधिक कैलशियम की आवश्यकता होती है क्योंकि गर्भस्थित बालक की अस्थियों के निर्माण के लिये

कैलशियम की बहुत अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है और यदि यह अतिरिक्त मात्रा भोजन में नहीं पहुँचेगी तो माता की हड्डियों से कैलशियम स्थानान्तरित हो कर गर्भस्थित बालक के प्रयोग के लिये पहुँचेगा, परिणामतः माता कैलशियम की हीनता से उत्पन्न हुये दोषों का शिकार हो जायेगी। इसलिये इस अवस्था में भोजन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

कैलशियम की उपलब्धि के लिये सर्वोत्तम साधन दूध है। क्योंकि कैलशियम की अधिक मात्रा के साथ ही साथ दूध में यह ऐसे रूप में होता है कि इसके अधिकांश का आत्मीकरण सुगमता से हो जाता है। साथ ही साथ दूध में कैलशियम एवं स्फुर के संयोगिक उसी अनुपात में होते हैं जोकि दूध में उपस्थित कैल-शियम के शीघ्रतम आत्मीकरण के लिये उपयुक्त है।

इनकी अपेक्षा दूध में पाये जाने वाले अन्य खनिज लवण सोडियम क्लोराइड (सैन्धव) एवं पोटैशियम क्लोराइड हैं। मैगनीशियम के स्फुर संयोगिक भी कुछ अंशों में पाये जाते हैं।

दूध में लौह लवणों की कमी होती है। परन्तु बच्चा पैदा होने से पहले ही, गर्भावस्था में अपनी माता से लेकर अपने शरीर में लौह संयोगिक इतने काफी परिमाण में एकत्र कर लेता है कि जन्म के उपरान्त कुछ समय तक उसे भोजन में उपस्थित लौह के लिये आश्रित नहीं रहना पड़ता। परन्तु फिर भी जन्म से कुछ महीनों के उपरान्त दूध के साथ-साथ हरी शाक भाजी का रस आदि देना प्रारम्भ कर देना चाहिये। इससे लौह हीनता जनित रक्ताल्पता होने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती।

विटामिन—दूध में विटामिनों की उपस्थिति का सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयोग 'हॉपकिन्स' द्वारा किया गया था—

उसने आठ-आठ चूहों के दो पृथक् समूहों पर अपना प्रयोग

प्रारम्भ किया। परिणाम चित्र सं० ३० के अध्ययन से स्पष्ट हो जायेगा।

उसने चूहों के एक दल (अ) को विटामिन-रहित भोजन पर रक्खा, और दूसरे दल (ब) को उसी भोजन के साथ थोड़ा सा दूध और दिया यह क्रम प्रथम १८ दिन तक जारी रहा। दोनों समूहों के चूहों के औसत भार की वृद्धि में अन्तर स्पष्ट है।

दल (अ) के चूहों के भार में कोई बढ़ती नहीं हुई—दूसरी ओर दल (ब) के औसत भार में लगातार और नियमित वृद्धि हुई।

१८ वें दिन के बाद उसने क्रम बदल कर दल (ब) को तो विटामिन रहित भोजन देना प्रारम्भ किया और दल (अ) के भोजन में दूध और बढ़ा दिया। अब दल (ब) की वृद्धि शीघ्र ही रुक गई और दल (अ) के चूहों का औसत भार नियमित रूप से बढ़ने लगा।

इस भाँति 'हॉपकिंस' ने अपने इस प्रारम्भिक प्रयोग से निर्विवादतः यह सिद्ध कर दिया कि दूध में कोई ऐसा तत्व अवश्य विद्यमान है, जो शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है।

दूध में स्वच्छ एवं ताज़ी अवस्था में ही विटामिन काफी मात्रा में होते हैं। दूध में विटामिन 'ए' काफी परिमाण में होता है, इसलिये बढ़ते हुये बालकों के लिये विटामिन 'ए' की प्राप्ति के लिये दूध एक उत्तम पदार्थ है। दूध में विटामिन 'ए' की मात्रा गाय अथवा माता के भोजन पर निर्भर करती है। हरी घास खाने वाली गायों के दूध में सूखे भूसे पर आश्रित गायों के दूध से कहीं अधिक विटामिन 'ए' होता है। इसी भाँति जिस स्त्री के आहार में ताजे फल एवं हरी शाक-भाजियों की प्रचुरता होगी उसके दूध में विटामिन 'ए' की मात्रा अधिक होगी।
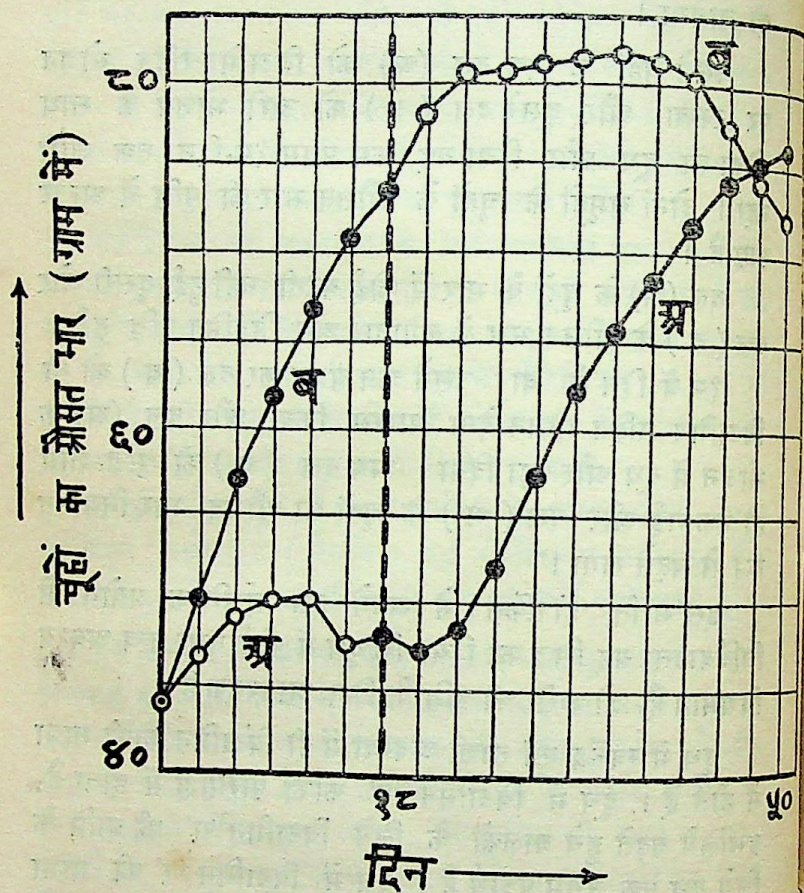
[हापकिन्स के प्रयोग के आधार पर]

चित्र सं० ३०

गाय के दूध में विटामिन 'डी' भी कुछ अंशों में होता है परन्तु इतना काफी नहीं होता कि वह बालकों की विटामिन 'डी' की दैनिक आवश्यकता को पूरा कर सके। इसके लिये बालकों को नित्यप्रति थोड़ी देर के लिये नंगे बदन धूप में बैठने देना चाहिये। यदि सूर्य का प्रकाश न मिल सके (जो कि भारत में हास्यास्पद प्रतीत होता है।) तो बालक को २०-३० बूंद कॉड लिवर ऑयल प्रतिदिन देना चाहिये।

गाय के दूध में 'बी' वर्ग के विटामिन भी पाये जाते हैं परन्तु यह भी काफी मात्रा में नहीं होते।

विटामिन 'सी' की मात्रा दूध में कम होती है। ताज़े गाय के दूध में कुछ अंशों में विटामिन 'ई' भी होता है।

दूध उबालने से उसमें उपस्थित विटामिनों की मात्रा बहुत कम हो जाती है—विशेषकर विटामिन 'बी' और 'सी' पर अधिक प्रभाव पड़ता है। परन्तु इस डर से दूध को न उबाल कर कच्चा ही प्रयोग करना उचित नहीं। क्यों कि ऐसा करना ख़तरे से खाली नहीं। दूध में रोगों के कीटाणु बड़ी सुगमता से विकसित होते हैं। इसलिये प्रयोग करने से पहले सदैव दूध को उबाल कर सुरक्षित कर लेना चाहिये। विटामिनों की कमी तो अन्यान्य पदार्थों से बहुत ही आसानी से पूरी की जा सकती है। विटामिन 'सी' की कमी को पूरा करने के लिये उबले दूध के साथ ताज़े फलों का रस अथवा हरी शाक भाजी के रस का प्रयोग करना चाहिये। टमाटर अथवा संतरे का रस इसके लिये सर्वोत्तम है।

यहाँ यह बता देना उचित है कि दूध गरम करने की जो प्रथा हमारे घरों में प्रचलित है वह बहुत ही दोषपूर्ण है। बहुधा हिन्दुस्तानी घरों में भोजन आदि बनाने के बाद दूधके बर्तन को चूल्हे पर रख दिया जाता है और उसे घंटों धीरे-धीरे गरम होने

दिया जाता है। दूध घंटों उबलता रहता है। तदुपरान्त उसे बहुधा किसी मट्टी के बर्तन में रख कर फिर किसी गुर्सी अथवा अंगीठी में आग के ऊपर रख दिया जाता है जिससे कि वह ठंडा न होजाये। इस भाँति वह बहुत देर तक पकता रहता है जब तक कि उसमें एक विशेष प्रकार की सुगन्ध एवं स्वाद नहीं आ जाता। इसे 'कढ़ा हुआ दूध' कहते हैं। अज्ञानतावश इस प्रकार का कढ़ा हुआ दूध बहुत ही उत्तम और पुष्टिकारक समझा जाता है। परन्तु यथार्थता कुछ और ही है। इस भाँति कढ़े हुये दूध की प्रोटीनें दुष्पाच्य हो जाती हैं और इतनी सुगमता एवं पूर्णता से हमारे शरीर के काम नहीं आ सकती। विटामिनों का भी सर्वनाश हो जाता है।

इसलिये दूध को कीटाणुओं आदि से सुरक्षित करने के लिये केवल इतना गरम करना ही काफी है कि उसमें एक उबाल आ जाये। तदुपरान्त उसे आग पर से उतार कर शुद्ध बर्तन में रख लेना चहिये।

विभिन्न पशुओं का दूध—निम्न सारिणी में स्त्री के दूध के अतिरिक्त कुछ मुख्य पालतू पशुओं से प्राप्त दूध के रासायनिक संगठन का अनुमान दिया गया है:—

दूध	प्रोटीन प्रतिशत	वसा प्रतिशत	शर्करा प्रतिशत	विटामिन			खनिज लवण
				ए	बी	सी	
स्त्री का	१.२५	३.५	७.५	++	+	+	०.२
गाय	४.०	४.८	५.०	+++	++	+	०.७५
भैंस	४.०	८.२	४.६	+++	+	+	०.८
बकरी	३.६	४.४	४.०	+++	+	+	०.८६
भेड़	५.२८	७.०४	४.६	+++	+	+	
गधी	१.८	१.०	५.५				०.४२

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि गाय और स्त्री के दूध में क्या अन्तर है। स्त्री के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा कम (लगभग आधी) परन्तु शर्करा की मात्रा अधिक होती है। इसलिये जब कभी माता के दूध के स्थान पर गाय का दूध बालक को देना पड़े तो उसमें पानी की उचित मात्रा एवं थोड़ी सी शर्करा मिला कर स्त्री दुग्ध से मिलता जुलता कर लेना चाहिये और तब प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करने से उसके पचने में सुविधा हो जाती है।

भैंस का दूध—गाय के दूधकी अपेक्षा अधिक पुष्टिकारक माना जाता है। इसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है एवं स्नेहन पदार्थ भी गाय के दूध से दुगने होते हैं। भारत में भैंस के दूध से मक्खन और घी निकाला जाता है।

बकरी और भेंड़ का दूध—भी उत्तम होता है। यदि भारत में बकरियों की नस्ल सुधारी जाये और उन्हें ठीक तरह से पाला जाय तो दूध की समस्या कुछ अंशों में आसानी से हल हो सकती है।

गधी के दूध—का रासायनिक संगठन स्त्री के दूध से अधिक मिलता जुलता है। कुछ देशों में गधी का दूध प्रयोग किया जाता है। बालकों के लिये यह उत्तम है। और सुगमता से पच जाता है।

कृत्रिम दूध—आज कल कृत्रिम दूध, डब्बों में बन्द किया हुआ गाढ़ा दूध एवं सुखाये हुये दूधका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। जिन स्थानों में ताजा दूध नहीं मिल सकता जैसे, लड़ाई पर फौजों के लिये, और जहाजों पर केवल वहीं इस प्रकार के दूध का प्रयोग करना चाहिये। पारिवारिक जीवन में इन कृत्रिम

आहारों के स्थान पर स्वच्छ दूध को ही प्रथम स्थान देना चाहिये क्योंकि इन कृत्रिम आहारों में इतनी जीवनीय शक्ति नहीं होती जितनी कि ताज़े दूध में। विटामिनों की मात्रा बहुत कम होती है। स्नेहन पदार्थों का परिमाण भी कम होता है। जब बालकों के लिये इस प्रकार के कृत्रिम आहार का प्रयोग किया जाये तो उन्हें, सन्तरे अथवा टमाटर का रस, हरी साग भाजी का शोरबा, कॉडलिवर ऑयल आदि अवश्य देना चाहिये ताकि उनकी विटामिन सम्बन्धी दैनिक आवश्यकतायें पूरी होती रहें।

क्रीम निकाला हुआ दूध—शहरों में मक्खन अथवा क्रीम निकाल कर शेष दूध को बहुत ही सस्ते मोल पर बेच देते हैं। ग़रीब आदमी ताज़े दूध की अपेक्षा इसे कम दाम देकर खरीद सकते और प्रयोग कर सकते हैं। इसमें स्नेहन पदार्थ की मात्रा बहुत कम हो जाती है, परन्तु जहाँ तक प्रोटीनों का सम्बन्ध है—दूध की उत्तम प्रोटीनें लगभग उसी परिमाण में इसमें भी उपस्थित रहती हैं और कम दाम में आसानी से उपलब्ध की जा सकती हैं।

दही—दूध को 'जामन' डाल कर जमा देने से दही बनता है। ऐसा एक कीटाणु विशेष की क्रिया द्वारा होता है। यह कीटाणु दूध में उपस्थित शर्करा को अम्ल में परिवर्तित कर देते हैं। और इसी अम्ल की उपस्थिति से दूध जम कर दही बन जाता है। ये कीटाणु हमारे लिये सर्वथा हानिरहित होते हैं—बल्कि कुछ अंशों में लाभप्रद ही हैं। क्यों कि ये कीटाणु अपनी उपस्थिति के कारण अन्य हानिकर कीटाणुओं को नहीं बढ़ने देते हैं। यही कारण है कि दही का प्रयोग अतिसार, पेचिश आदि के रोगियों में लाभ के साथ किया जाता है।

दही में भी दध के सभी मूल अवयव उसी मात्रा में विद्यमान

रहते हैं जितने कि दूध में। इसलिये जो लोग दूध का प्रयोग किसी कारणवश नहीं कर सकते वे दही से इस कमी को पूरा कर सकते हैं।

दही स्निग्ध, सुस्वादु एवं पुष्टिकारक खाद्य पदार्थ है। इसका प्रयोग भांति भांति से किया जाता है। दही की लस्सी गरमी के दिनों में शीतल एवं सुस्वादु पेय है।

मट्ठा—दही में से मथ कर मक्खन निकाल लेने के बाद जो घोल बचता है उसे मट्ठा कहते हैं। इसमें स्नेहन पदार्थों एवं विटामिनों की मात्रा कम हो जाती है परन्तु दूध की उत्तम प्रोटीनें इसमें भी लगभग उतनी ही मात्रा में रहती हैं और आसानी से कम दामों में मिल सकती हैं। गाँवों में लोग मक्खन निकाल कर घी बना कर बेच देते हैं और मठे का प्रयोग स्वयं करते हैं—इस भांति उन्हें प्रथम श्रेणी की प्रोटीनें भी मिल जाती हैं और उनकी आर्थिक समस्या भी हल होती रहती है।

मठा एक सुस्वादु, शीतल एवं रुचिकर पेय है। आयुर्वेद साहित्य में इसका बहुत गुणानुवाद किया गया है। कहावत है कि—

दिनान्ते च पिवेत दुग्धं, निशान्ते च पिबेत् पयः।
भोजनान्ते च पिबेत् तक्रं, वैद्यस्य किं प्रयोजनम्॥

अर्थात् दिन बीतने पर दूध पीवे, उषाकाल में जल पिये और भोजन के उपरान्त मठा पीवे तो आप ही स्वास्थ्य संरक्षित रहता है। अतएव ऐसे मनुष्य को डाक्टर अथवा वैद्य से क्या प्रयोजन ?

छाना और फटे हुये दूध का पानी—गरम दूध में नीबू का रस निचोड़ने से वह दूध फट जाता है। फटे हुये दूध का घनांश (छाना) छान कर अलग कर लिया जाता है और उससे

भांति भांति के सुस्वादु व्यंजन बनाये जाते हैं। शेष बचे हुये पानी को मठे की तरह जल के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। इसमें प्रोटीन और वसा के अलावा दुग्ध-स्थित अन्य सभी पदार्थ रहते हैं। कुछ रोगों में यह एक उत्तम पथ्य के रूप में प्रयोग किया जाता है।

पनीर—भी दूध को फाड़ कर बनाया जाता है। इसमें भी दुग्धस्थित प्रोटीन, वसा, कर्बोज एवं खनिज पदार्थों का अधिकांश उपस्थित होता है। कैलशियम और फॉसफोरस भी काफी मात्रा में होते हैं। यह एक उत्तम खाद्य पदार्थ है और प्रथम श्रेणी की प्रोटीन प्रदान करता है।

मक्खन—जब दूध अथवा दही खूब मथा जाता है तो उसमें उपस्थित छोटे छोटे वसा बिन्दुक एक दूसरे से मिल कर मक्खन के रूप में अलग हो जाते हैं। इसके साथ मक्खन में दूध में उपस्थित प्रोटीन का कुछ अंश और जल का अंश भी होता है। मक्खन में लगभग ८२ प्रतिशत शुद्ध वसा, १२-१५ प्रतिशत पानी और शेष अन्यान्य जान्तव पदार्थ होते हैं। मक्खन में उपस्थित वसा बहुत सुगमता से पच जाती है यहाँ तक कि एक रोगी मनुष्य भी लगभग २ छटांक मक्खन प्रतिदिन आसानी से हज़म कर सकता है। अधिक से अधिक केवल ·५ प्रतिशत भाग ही अनात्मीकृत रह जाता है।

मक्खन में विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में होता है। विटामिन 'डी' कम होता है और 'बी' और 'सी' विटामिन बिलकुल नहीं होते।

मक्खन में प्रोटीन की उपस्थिति के कारण वह अधिक दिनों तक रक्खा नहीं जा सकता। यदि इसे अधिक दिन तक रखना हो तो गरम कर के छान कर घी में परिवर्तित कर लेना चाहिये।

घी में विटामिन 'ए' की मात्रा मक्खन से कम होती है। यदि घी बनाते समय उसे को आवश्यकता से अधिक गरम न किया जाये तो काफी विटामिन 'ए' घी में सुरक्षित रक्खा जा सकता है।

दूध और उससे बने खाद्य पदार्थों के महत्व को अब हम अच्छी तरह समझ गये हैं। परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि जहाँ दूध हमारे लिये इतनी उत्तम वस्तु है—वहाँ दूसरी ओर यदि इसकी शुद्धता का उचित ध्यान न रक्खा गया तो लेने के देने पड़ जाने की नौबत आ सकती है।

दूध में यदि किसी रोग के कीटाणु प्रवेश पा जायें तो वे बड़ी सुगमता और तीव्रता के साथ बढ़ते हैं और ऐसे दूध का प्रयोग करने से वह व्यक्ति सुगमता से विषम—ज्वर, विशूचिका, हैजा, अतिसार एवं क्षय आदि रोगों का शिकार हो सकता है। इसलिये सदैव दूध की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिये और उसे बिना उबाले हुये प्रयोग नहीं करना चाहिये।

दूध सदैव स्वस्थ पशुओं का होना चाहिये। दूध देने वाले पशुओं को खुले चरागाहों में खुली हवा और सूर्य के प्रकाश में रखना चाहिये। उनका भोजन केवल हरी और ताजी घास ही होना चाहिये।

दूध दुहते समय सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिये। दूध दुहना प्रारम्भ करने से पहले ही जानवर की पूंछ उसकी पिछली टांगों के साथ बाँध देनी चाहिये जिससे दूध दुहते समय वह अपनी पूँछ हिला कर गंदे छींटे न उड़ा सके। थन शुद्ध जल से भली प्रकार धो लेने चाहिये। जिस बर्तन में दूध दुहा जाये वह गरम पानी से खूब अच्छी तरह साफ कर लिया जाना चाहिये और मक्खियों से सुरक्षित होना चाहिये।

दूध दुहने का स्थान स्वच्छ होना चाहिये और स्वयं दूध दुहने वाला व्यक्ति स्वस्थ होना चाहिये। किसी भी प्रकार के रोगी व्यक्ति को दूध नहीं दुहना चाहिये। दूध दुहते समय उसमें उंगली नहीं डुबोनी चाहिये।

दुहे जाने के उपरान्त दूध वहाँ से हटा कर किसी स्वच्छ ठंडे स्थान में मक्खियों आदि से सुरक्षित रखना चाहिये। शीघ्र ही उसे गरम कर लेना चाहिये।

ग्वालों के यहाँ का दूध सम्भवतया कभी भी शुद्ध नहीं होता। बहुधा दूध दुहने के उपरान्त उसमें गन्दा पानी, बचा हुआ दूध आदि मिला दिया जाता है इसलिये वह ताज़ा दूध भी दूषित हो जाता है। इसलिये कच्चा दूध तो कभी भी नहीं पीना चाहिये। सदैव उबाल कर ही दूध का प्रयोग हितकर है।

दूध देनेवाले जानवरों की समय-समय पर डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिये और यदि उनमें से कोई भी अस्वस्थ पाया जाये तो उसे शीघ्र ही औरों से अलग कर देना चाहिये।

इतनी सावधानियाँ रखने के बाद वस्तुतः दूध एक अमूल्य खाद्य-पदार्थ की भाँति प्रयोग किया जा सकता है। अन्यथा सामान्य गन्दे दूध से तो न पीना ही श्रेयस्कर है।

अंडा

अंडे से विकसित होने वाला प्राणी बिना किसी अन्य बाहरी पदार्थ की सहायता के केवल अंडे के अन्दर उपस्थित पदार्थों से ही निर्मित और विकसित होता है। इसलिये स्वभावतः अंडे में वे सब पदार्थ होते हैं जो हड्डी, माँस एवं रक्त आदि के निर्माण के लिये आवश्यक हैं। इस दृष्टि से हम अंडे को भी 'पूर्ण भोजन' शब्द से अलंकृत कर सकते हैं परन्तु केवल उसमें विकसित होनेवाले प्राणियों के लिये ही। ताहम् हमारे लिये

अंडा एक बहुत उत्तम खाद्य-पदार्थ है जैसाकि आगे चल कर स्पष्ट हो जायेगा।

मुर्गी के एक औसत अंडे का वज़न लगभग ५० ग्राम (दो आउंस अथवा १ छटाँक) होता है। उसके भिन्न-भिन्न भाग इस भाँति होते हैं :—

खोल	...	१२ प्रतिशत	अथवा	६ ग्राम
सफ़ेदी	...	५८ ,,	,,	२६ ,,
ज़र्दी	...	३० ,,	,,	१५ ,,

खोल में लगभग शत प्रतिशत कैल्शियम कार्बोनेट होता है।

अंडे का संगठन इस प्रकार है :—

अंडे का भाग	जल	प्रोटीन	वसा	खनिज लवण
सफेदी	८५·७ प्र.श.	१२·६ प्र.श.	०·२५ प्र.श.	०·५६ प्र.श.
ज़र्दी	५०·६ ,,	१६·२ ,,	३१·७५ ,,	१·०६ ,,

इस भाँति स्पष्ट है कि ज़र्दी सफ़ेदी की अपेक्षा अधिक उत्तम भाग है। ज़र्दी में सफ़ेदी की अपेक्षा जल का परिमाण कम होता है और प्रोटीन वसा एवं खनिज-पदार्थ का अधिक। वसा तो लगभग सारी की सारी ही केवल ज़र्दी में होती है। ज़र्दी में उपस्थित प्रोटीन सफ़ेदी की प्रोटीनों की अपेक्षा अधिक उत्तम होती हैं। इसमें हमारे लिये आवश्यक 'एमिनो-एसिड' एवं फॉसफोरस का परिमाण काफी अधिक मात्रा में होता है। ज़र्दी के स्नेहन अंश में स्फुर के संयोगिक भी अधिक मात्रा में होते हैं और इस भाँति हड्डियों के लिये आवश्यक फॉसफोरस की उपलब्धि के लिये अंडा उत्तम आहार है।

जहाँ तक खनिज-पदार्थों का सम्बन्ध है अंडे की ज़र्दी में,

कलशियम, पोटैशियम, लौह एवं स्फुर के संयोगिक बहुत अधिक परिमाण में होते हैं।

जर्दी में उपस्थित प्रोटीन एवं वसा बहुत ही सुगमता से पच जाती हैं। विटामिन 'ए' और 'डी' भी काफी मात्रा में होते हैं। विटामिन 'बी₁' एवं 'बी₂' भी कुछ अंशों में होते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह भ्रम न होना चाहिये कि अंडे की सफ़ेदी बेकार वस्तु है। तुलनात्मक दृष्टि से जर्दी अधिक धनी है। इसके यह अर्थ नहीं कि सफ़ेदी उत्तम पदार्थ नहीं। अंडे का प्रधान गुण प्रथम श्रेणी की प्रोटीन की दृष्टि से है। और ये प्रोटीनें सफ़ेदी में भी बहुत अधिक मात्रा में होती हैं। एतदर्थ अंडे की सफ़ेदी और जर्दी दोनों ही उपयोगी भाग हैं। सफ़ेदी को व्यर्थ में फेंकना उचित नहीं।

परिणामतः उपर्युक्त कथन का विचार करने से स्पष्ट है कि अंडा बढ़ते हुये बालकों के लिये और विशेष कर अस्थि-विकृति सरीखे रोगों से ग्रसित बालकों के लिये, एक आदर्श और बहुत ही उत्तम आहार है।

चावल और अन्न अधिक परिमाण में खाने वाले व्यक्तियों के लिये—जिनके आहार में कर्बोज तो बहुत अधिक मात्रा में रहते हैं; प्रोटीन भी थोड़ी सी होती है परन्तु वसा की विशेष कमी रहती है—भोजन में अंडा शामिल करना एक उत्तम सुधार होगा और उनका भोजन समतुल हो जायेगा।

बत्तकों आदि के अंडों का 'संगठन' भी लगभग मुर्गी के अंडे का सा ही होता है। उनका आकार मुर्गी के अंडे से कुछ बड़ा होता है।

अंडा सुगमता से पच सकने वाला आहार है। अंडे का केवल लगभग ३ प्रतिशत भाग ही अनात्मीकृत रह जाता है।

अंडे को अधिक देर तक उबालने अथवा उसे घी आदि में भूनने से उसके पक्वीकरण में अधिक समय लगता है।

एक अंडे से लगभग ७०-६० कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है। प्रोटीन, वसा, लौह, कैल्शियम, स्फुर एवं विटामिन 'ए', 'डी' और 'बी' के लिये अंडा एक उत्तम खाद्य-पदार्थ है। कर्बोज इसमें बहुत कम होता है।

कुछ लोगों को अंडा स्वभावतः प्रतिकूल होता है। उन्हें तुरंत क़ै हो जाती है, त्वचा पर लाल चकते पड़ जाते हैं यहाँ तक कि लोग अचेतन होते हुये तक देखे गये हैं।

कुछ लोगों की आँतों में अंडा खाने के उपरान्त बहुत ही दुर्गन्धियुक्त गैस बनने लगती है। यह गैस गंधक की उपस्थिति के कारण बनती है। अंडे में उपस्थित गंधक के परिमाण का अधिक अंश केवल सफ़ेदी में ही होता है, इसलिये ऐसे व्यक्तियों को केवल अंडे की ज़र्दी का ही प्रयोग करना चाहिये।

अंडे अधिक दिन तक रखने पर ख़राब हो जाते हैं। यदि अंडे को नमक के लगभग १० प्रतिशत घोल में डुबाया जाये तो अच्छा अंडा तो उसमें नीचे डूब जायेगा परन्तु यदि वह ख़राब हो गया होगा तो तैरता रहेगा। अंडे को धूप की ओर रख कर देखा जाये तो; यदि वह ताज़ा और अच्छा होगा तो उसमें बीच में प्रकाश की झलक मालूम होगी और वह कुछ-कुछ पारदर्शक होगा। परन्तु यदि अंडा ख़राब हो चुका है तो उसमें यह बात उसके सिरों पर पाई जायेगी। ख़राब अंडे का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

माँस

प्रोटीन की प्राप्ति के लिये माँस सबसे उत्तम पदार्थ है। इसमें पाई जाने वाली प्रोटीनें उत्तम श्रेणी की होती हैं और उनका लगभग शत प्रतिशत आत्मीकरण होता है। माँस में वसा

भी कुछ मात्रा में अवश्य ही उपस्थित होती है। यदि माँस में से दिखाई देने वाला सब वसामय सौत्रिक (चर्बी) तंतु निकाल दिया जाये तो भी वसा की कुछ मात्रा माँस के रेशों के बीच में उपस्थित रहती है। इस भाँति स्थित वसा की मात्रा विभिन्न पशुओं के माँस में अलग-अलग होती है। सुअर के माँस में ये बहुत अधिक होती है और इसीलिये ये अधिक दुष्पाच्य भी होता है क्योंकि इस भाँति स्थित वसा आमाशयिक रस को मांस के रेशों तक सुगमता पूर्वक नहीं पहुँचने देती। मांस में कुछ अंशों में कर्बोज भी होता है, इनमें 'ग्लाइकोजन' मुख्य है।

मांस में विटामिन 'ए' होता है। विटामिन 'डी' एवं 'सी' भी कुछ मात्रा में होते हैं। परन्तु विटामिन 'सी' अधिकतर केवल ताजे और कच्चे गोश्त में ही होता है। विटामिन 'ई' की भी कुछ मात्रा मांस में होती है परन्तु विटामिन 'बी' बिलकुल ही नहीं होता। मांस में कैलशियम की मात्रा कम और फासफोरस की अधिक होती है।

मछली

समुद्र-तटवर्ती स्थानों के निवासियों का मुख्य भोजन है। इसकी प्रोटीनें भी उत्तम श्रेणी की होती हैं। केवल विटामिन 'सी' को छोड़ कर अन्य सब विटामिन मछली में काफी मात्रा में पाये जाते हैं। मुख्यतः विटामिन 'ए' और 'डी' में मछली विशेष रूप से धनी होती है। 'आयोडीन' 'और' 'ताँबा' मछली में अधिक मात्रा में होते हैं।

इस भाँति वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर मांस, मछली और अंडे, उत्तम खाद्य पदार्थों की श्रेणी में आ जाते हैं। प्रथम श्रेणी की प्रोटीनों की उपलब्धि के लिये तो ये सर्वोत्तम पदार्थ हैं।

यदि मांस स्वस्थ पशु का हो और उचित साधनों द्वारा काटा

और बेचा जाये तो इससे उत्पन्न होने वाले रोगों का भय भी नहीं रहता।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के अनुसार मांस को स्वाद के लिये बहुत अधिक मात्रा में उपयोग करने वाले स्वयं अपने स्वास्थ्य पर कुठाराघात करते हैं। इसके अधिक प्रयोग से यकृत और गुर्दों को बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है। वृक्करोगों (गुर्दे की बीमारियों) में तो इसका सर्वथा त्याग ही उत्तम है। 'हाई ब्लड प्रेशर' के रोगियों में भी अधिक मांस का सेवन स्वास्थ्य-हानि का कारण बन सकता है।

हमारे देश में हिन्दुओं की सवर्ण जातियों में गोश्त खाना उत्तम नहीं समझा जाता। इस विवाद में पड़ना यहाँ उचित नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से जो सत्य है उसका विवेचन ही हमें अभीष्ट है—चाहे समाज को प्रिय हो अथवा अप्रिय।

खाने के लिये माँस स्वस्थ जानवर से प्राप्त हुआ होना चाहिये।

आरोग्य पशु का शरीर सुगठित और पेशियाँ दृढ़ होती हैं। उसके नितम्ब भरे हुए होते हैं। पसलियाँ दिखाई नहीं देतीं। नेत्र चमकदार, त्वचा चमकीली, श्वास निर्गन्ध एवं नाक की श्लैष्मिक कला लाल और चमकती हुई होती है। उसकी चाल ठीक होती है। रोगी पशु के बाल झड़ने लगते हैं। चमड़े की चमक जाती रहती है। मुँह से झाग गिरती, जीभ लटकती रहती और साँस जोर से चलती है। शरीर गरम रहता है और श्वास में दुर्गन्धि रहती है।

उत्तम मांस में कड़ापन होता है। उसे छूने से अँगुलियाँ गीली नहीं होतीं। मांस का रंग न तो गहरा लाल होना चाहिये और न पीला ही। अच्छे माँस का रंग हलका लाल होता है।

सड़े मांस में दुर्गन्धि आने लगती है। उसका रंग बिगड़ जाता है और उसमें ढीलापन आ जाता है। अच्छे मांस की प्रतिक्रिया क्षारीय होती है और बिगड़े मांस की अम्लीय। उत्तम मांस पकाने पर मात्रा में उतना ही रहता है।

मांस की सफाई पर ध्यान न देने से बहुत हानि हो सकती है। कसाईखाने की धूल या रोगी और दूषित मांस तथा रक्त के संसर्ग से अच्छा मांस भी दूषित हो जाता है। रोगी मनुष्य के छूने से भी मांस दूषित हो सकता है। मांस खाने वालों को इन बातों की सावधानी रखनी चाहिये।

अन्न वर्ग

इस प्रकरण में हम अपने भोजन में प्रयोग होने वाले विभिन्न अन्नादि का वैज्ञानिक विवेचन करेंगे। वनस्पति-जगत से प्राप्त इन पदार्थों का प्रयोग हम मुख्यतः दो रूप में करते हैं—

(१) अनाज—जैसे कि गेहूँ, जौ, बाजरा, ज्वार, मक्का आदि। इन चीज़ों को हम विभिन्न रूपों में इस्तेमाल करते हैं। इनका सबसे अधिक उपयोग रोटी के रूप में होता है।

दूसरे तरह के अनाज वे हैं जिनका प्रयोग उनके उसी रूप में होता है। इनमें से मुख्य चावल है।

(२) दालवर्ग—जैसे कि चना, अरहर, मटर, मूंग, उरद, मसूर आदि। इन चीज़ों का उपयोग हमारे घरों में दाल के रूप में होता है। शाकाहारियों के भोजन में इनका मुख्य स्थान है, क्योंकि इनके लिए दाल ही प्रोटीन प्राप्ति का एक मात्र साधन हैं। दाल की प्रोटीनें द्वितीय श्रेणी की होती हैं। क्योंकि प्रथम तो इनमें शरीर के लिए आवश्यक 'एमिनो एसिड' इतनी मात्रा में नहीं होते जितने कि पशुजन्य पदार्थों में, दूसरे दालों की प्रोटीन का अपेक्षाकृत बहुत कम भाग आत्मीकृत होकर हमारे शरीर के काम आता है। अब हम इनमें से हर एक का अलग अलग वर्णन करेंगे।

गेहूँ

गेहूँ के दाने के ऊपर एक कठोर आवरण रहता है। आटा पिस कर छाने जाने पर यह चोकर के रूप में निकलता है। गेहूँ के एक ओर जहाँ एक आँख सी दिखाई पड़ती है—अँकुआ होता है। बोये जाने पर यही वृक्ष-रूप में उत्पन्न होता है। शेष भाग में इस अंकुए के उगने पर उसके प्रयोग के लिये भोजन एकत्रित रहता है।

अंकुए में प्रोटीन और वसा की अधिक मात्रा होती है। विटामिन 'बी' भी इसमें अधिक होता है। बाहर का आवरण (चोकर) विटामिन 'बी' और खनिज (विशेष कर लौह) पदार्थों में विशेष धनी होता है। शेष भाग में, जो पिस कर आटे में परिवर्तित हो जाता है, श्वेतसार की अधिकता होती है। गेहूँ के विभिन्न भागों का रासायनिक उपादान इस भाँति है:—

पदार्थ	चोकर	अकुंआ	मिंगी	साबित गेहूँ
जल	१२·५	१२·५	१३·०	१४·५
प्रोटीन आदि	१६·४	३५·८	१०·५	११·०
वसा	३·५	१३·१	०·८	१·२
कर्बोज	४३·६	३१·२	७४·३	६६·०
काष्ठौज	१८·०	१·८	०·७	२·६
खनिज	६·०	५·७	०·७	१·७

कठिया गेहूँ में पिसिया गेहूँ की अपेक्षा प्रोटीन अधिक होती है और कर्बोज कम। अधिकतर गेहूँ को पीस कर आटे या मैदे के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। इसका दलिया भी अच्छा बनता है। विदेशों से गेहूँ को दबा कर चपटे रूप में 'फ्लेक्स' के

नाम पर यहाँ भेजा जाता है। इनमें सब से उत्तम उपाय गेहूँ के उपयोग का निम्न है—

गेहूँ को पानी में इतना भीगने दो कि वह फूल कर फटने लगे। उसके बाद निकाल कर दूध में उबाल लो। इच्छानुसार शकर आदि मिला कर इसका प्रयोग किया जाये।

पीसे जाने पर बाहर का कठोर आवरण और अँकुआ अधिक नहीं पिस पाता। इसलिये आटा छानने पर ये भाग चोकर के रूप में अलग हो जाते हैं। मैदे में तो इनका अंश बिलकुल ही नहीं रह पाता।

इस भांति चोकर के साथ गेहूँ में उपस्थित विटामिन 'बी' और समस्त खनिज अलग हो जाते है। आटे में केवल कर्बोज और थोड़ी सी प्रोटीन रह जाती है।

इसलिये जहाँतक हो सके गेहूँ का प्रयोग इस भांति करना चाहिये ताकि उसके सभी भाग व्यवहार में आ जायें।

चोकर की एक विशेषता और है—क्योंकि इसमें काष्ठौज का परिमाण अधिक होता है—इसलिये ये मलावरोध नहीं होने देता।

आटे से हम चपाती, रोटी, डबल रोटी, बिसकुट, केक तथा भांति भांति की देशी मिठाइयाँ बनाते हैं।

इनमें से डबल रोटी में एक विशेषता होती है।

डबल रोटी बनाने के लिये ख़मीर का प्रयोग होता है। ख़मीर कर्बोज पदार्थ को शर्करा में, शर्करा को अल्कोहल और कार्बन डाई-ऑक्साइड गैस में परिवर्तित करता है। पकाये जाने पर यह गैस तमाम रोटी में छोटे-छोटे बुलबुलों के रूप में भर जाती है—जिससे कि रोटी खूब फूल जाती है और उसमें लगभग २/३ भाग

गैस का होता है। इस भांति तैयार की हुई रोटी का रूप 'स्पंज' की भाँति हो जाता है। खाये जाने के उपरान्त पेट और आंतों में इसमें पाचक-रस बहुत अच्छी तरह अन्दर तक भिद जाते हैं जिससे कि यह अपेक्षाकृत आसानी से हजम होती है। खमीर के स्थान पर बेकिंग पाउडर का भी उपयोग होता है।

बाजरा

गेहूँ के बाद उपयोगिता में 'बाजरा' का दूसरा स्थान है। दक्षिण भारत में विशेषकर गुजरात, काठियावाड़ की ओर बाजरे का अधिक प्रचार है। उत्तर भारत में ग़रीब जनता ही इसका प्रयोग करती है। सम्पन्न परिवारों में कभी-कभी विशेष कर शीत-ऋतु में गुड़ और घी के साथ बाजरे की रोटी केवल स्वाद के लिए ही खाई जाती है।

बाजरे की प्रोटीन की अपेक्षा गेहूँ की प्रोटीन अधिक उत्तम होती है। परन्तु बाजरे में विटामिन 'ए' गेहूँ की अपेक्षा अधिक होता है। और क्योंकि बाजरे के आटे में से चोकर जैसी कोई वस्तु नहीं निकलती इसलिए इसमें विटामिन 'बी' भी काफ़ी परिमाण में रहता है।

बाजरे का प्रयोग रोटी और दलिये के रूप में होता है।

जौ

पोषण की दृष्टि से जौ गेहूँ के समान ही होता है। परन्तु गेहूँ की अपेक्षा इसमें ग्ल्यूटेन नामक प्रोटीन कम होती है। और क्योंकि आटे में लस आने के लिये ग्ल्यूटेन की उपस्थिति आवश्यक है इसलिए जौ के आटे की रोटी आसानी से नहीं बन पाती। यदि जौ के आटे के साथ उतना ही आटा गेहूँ का मिला लिया जाये तो यह बात नहीं रहती।

मक्का

मकई का प्रयोग अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका में अधिक होता है। भारतवर्ष में यह पंजाब में अधिक खाई जाती है। मक्का की प्रोटीन गेहूँ की अपेक्षा मध्यम श्रेणी की होती है। दक्षिण अमेरिका की मक्का खाने वाली जातियों में विटामिन 'बी २' की कमी से उत्पन्न हुआ 'पलाग्रा' रोग अधिक पाया जाता है।

जई

भारतवर्ष में इसका प्रयोग बहुत कम होता है। योरोप में यह बहुत खाई जाती है। इसमें वसा की मात्रा गेहूँ से लगभग पांच गुनी अधिक होती है। इसमें विटामिन 'ए' और 'डी' की नितांत हीनता होने के कारण इसके साथ दूध, अन्डे, मांस, मछली और फलों आदि का उपयोग बहुत आवश्यक है।

चावल

भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों का मुख्य आहार है। बंगाल, आसाम, बम्बई, मद्रास, विहार आदि में तो यह प्रधान भोज्य पदार्थ है। संसार के लगभग आधे निवासियों का एक मात्र आधार चावल है। अन्नवर्ग में चावल सबसे निकृष्ट अन्न है।

प्रथम तो इसमें प्रोटीन की मात्रा होती ही बहुत कम है और जो थोड़ी बहुत होती भी है—वह एक दम निकृष्ट श्रेणी की। चावल में लगभग ७६ प्रतिशत कर्बोज (श्वेतसार) होता है। कर्बोज की इतनी अधिक मात्रा आंतों में पहुँच कर अन्य पदार्थों के चूषण में बाधा पहुँचा सकती है। जिनका चावल ही प्रधान आधार है उन्हें आवश्यक शक्ति प्राप्त करने के लिए इसकी बहुत अधिक मात्रा का उपयोग करना होगा। आंतों में श्वेत-

सार की इतनी अधिकता से उसमें कुछ विशेष रासायनिक क्रियायें (फ़रमेन्टेशन) हो सकती हैं। जिनके कारण अधिक गैस बनती है और अन्य पदार्थों के चूषण में गड़बड़ी पड़ सकती है।

इन दोषों के अतिरिक्त चावल में वसा तथा खनिज बिलकुल ही नहीं होते। अन्य अनाजों की अपेक्षा इसमें विटामिन 'बी' की मात्रा एक तो पहले ही कम होती है दूसरे इसके प्रयोग करने के प्रचलित उपाय इतने दूषित हैं—कि जो कुछ थोड़ा बहुत विटामिन 'बी' होता भी है—वह भी प्रयोग होने से पहले ही नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि जिन देशों और प्रांतों के निवासियों का चावल ही प्रधान आहार है—वहीं 'बेरी-बेरी' रोग भी अधिक पाया जाता है। 'बेरी-बेरी' विटामिन 'बी' की कमी से उत्पन्न होता है।

भोजन में विटामिन 'बी' की कमी हो जाने का सबसे अधिक भय तब होता है जब कच्चे धान से निकले हुये चावलों को मिलों में खूब कूटा जाता है और इस कुटे हुये चावल का अंश भोजन में सबसे अधिक रहता है और साथ में दाल इत्यादि का अंश कम रहता है।

चावलों में इस विटामिन की कुछ कमी धोने और उबालने के समय हो जाती है। किन्तु यह कमी कच्चे धान से बने चावलों में उबले धान के चावलों की अपेक्षा अधिक होती है। जिन निर्धन व्यक्तियों के भोजन में चावल के अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थों का अनुपात बहुत कम होता है और वे कच्चे धान के चावल का ही उपयोग करते हैं जिसमें उपर्युक्त विटामिन की मात्रा धोने के कारण और भी घट जाती है, ऐसे व्यक्तियों के भोजन में इस विटामिन की बहुत अधिक कमी होने का डर रहता है। दूध में अधिकांश पोषक तत्वों की अधिकता रहती है किंतु विटामिन 'बी,' इसमें भी कम होता है।

डा० एक्रॉयड, बी० जी० कृष्णन, आर० पासमोर और ए० आर० सुन्दर राजन आदि ने कुनूर (दक्षिण भारत) प्रयोगशाला में विटामिन 'बी,' चावल में उसकी उपस्थिति, पैदा होने से भोजन से पहले तक की समस्त क्रियाओं का चावल में उपस्थित इस विटामिन की मात्रा पर प्रभाव एवं भारत में बेरीबेरी आदि विषयों पर बहुत परिश्रम पूर्वक अत्यन्त विस्तृत अनुसंधान और अध्ययन किया है। गरीब भारत की अधिकांश जनता अपने लिये आवश्यक शक्ति को प्राप्त करने के लिए सस्ते कर्जेज पदार्थों पर ही निर्भर रहती है जिनमें से चावल सबसे मुख्य है। केवल पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत, सिन्ध, पंजाब और संयुक्तप्रांत के कुछ पश्चिमी जिलों को छोड़कर समस्त भारत का मुख्य भोजन चावल ही है। आज-कल जनता की प्रवृत्ति मशीन का साफ किया हुआ चावल प्रयोग करने की ओर बढ़ रही है। इसलिये हम इस विषय को यहाँ अधिक विस्तार के साथ देना चाहते हैं। हम उपर्युक्त विद्वानों द्वारा अध्ययन की गई कुछ उन बातों का उल्लेख करेंगे जिनका जानना हमारे लिए आवश्यक है।

मशीन से साफ किया गया चावल

मशीन से साफ किए जाने की क्रिया से चावल में उपस्थित अधिकांश विटामिन निकल जाता है। चावल जितना ही अधिक मशीन से कूटा जाता है उसमें से उतना ही अधिक विटामिन कम हो जाता है, क्योंकि चावल एवं अन्य अनाजों में भी विटामिन 'बी' केवल बाहरी भूसी और अँकुओं में रहता है। इसीलिए चावल की जितनी ही अधिक कुटाई होगी उतनी अच्छी तरह बाहर की भूसी निकल जायेगी और उतना ही अधिक विटामिन कम हो जायेगा। यह निम्न तालिकाओं से स्पष्ट है—

कच्चे धान से निकाला गया (अरवा चावल)	विटामिन 'बी,' माईक्रोग्राम प्रति ग्राम चावल में
केवल धान से निकाले जाने के बाद	४.०
प्रथम पालिश के बाद	१.८
दूसरी पालिश के बाद	१.०
तीसरी पालिश (बाजार में भेजे जाने योग्य)	०.७

(२) विभिन्न प्रकार के चावलों में उपस्थित विटामिन 'बी,' (माइक्रोग्राम प्रति ग्राम चावल में)

धान छिलका उतारा हुआ		४.०
स्याम का मशीन से कुटा अरवा चावल		१.१
बरमा का मशीन से कुटा टूटा अरवा चावल		०.५
हैदराबाद का मशीन से कुटा अरवा चावल		१.२
मशीन से कुटा उसना चावल	कानानूर का चावल	१.७
	अनामलाय का चावल	२.१
	कूनूर का चावल	२.२

अरवा एवं उसना चावल में विटामिन बी १

कच्चे धान से निकाले गये चावल को अरवा चावल और चावल निकालने से पहले उबाले गये धान से निकले चावल को उसना चावल कहते हैं।

लगभग ३० वर्ष पहले सबसे प्रथम यह देखा गया कि अरवा चावल खाने वालों की अपेक्षा उसना चावल खाने वाले को बेरी-बेरी कम होती है। बाद के प्रयोगों से यह भी स्पष्ट हो गया कि बेरीबेरी के रोगी को अरवा चावल की जगह उसना चावल देना प्रारम्भ कर दिया जाय तो वह अच्छा हो सकता है और इन

चावलों के प्रयोग से यह रोग रोका जा सकता है। प्रारंभ में यह सोचा गया कि उसना चावल अरवा चावल की अपेक्षा मशीन में कम कुटा होता है। परन्तु डा० एक्रॉयड के बाद के प्रयोगों ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसना चावल में मशीन द्वारा खूब कूटे जाने के बाद भी अरवा चावल की अपेक्षा अधिक बेरीबेरी अवरोधक तत्व रहता है। उन्होंने इसका निम्न कारण बताया है। धान को उबालने की क्रिया में चावलों की बाहरी भूसी और
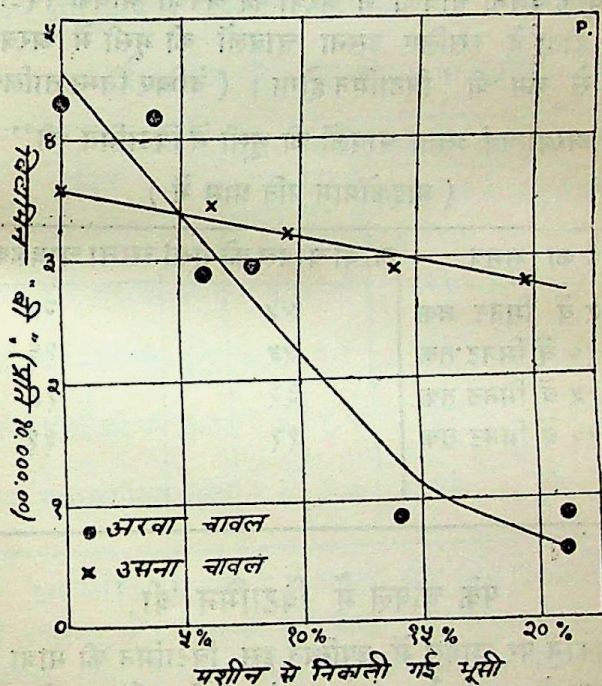
चित्र सं० ३१

कुटाई के बाद अरवा और उसना चावलों में उपस्थित विटामिन 'बी,' की मात्रा का तुलनात्मक चित्रण।

अँकुओं में निहित विटामिन का कुछ भाग वहाँ से निकल कर चावल की मींगी में अन्दर तक व्याप्त हो जाता है और अब इस चावल की चाहे कितनी भी कुटाई की जाय, विटामिन का वह भाग जो इस भाँति व्याप्त हो गया है चावल ही में रहेगा। इसलिये उसना चावल में अरवा चावल की अपेक्षा मशीन से खूब अच्छी तरह कूटे जाने के बाद भी बेरी बेरी अवरोधक तत्व अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में रह जाता है।

चूकि उसना चावलों में अरवा की अपेक्षा अधिक विटामिन 'बी' होता है इसलिए उसना चावलों की भूसी में अरवा की भूसी से कम 'बी,' विटामिन होगा। (देखिए निम्न तालिका)

अरवा एवं उसना चावलों की भूसी में विटामिन 'बी''

(माइक्रोग्राम प्रति ग्राम में)

कुटाई का समय	अरवा चावल की भूसी	उसना चावलकीभूसी
०–५ वें मिनट तक	४५	२५
५–१० वें मिनट तक	५५	१६
१०–१५ वें मिनट तक	३२	१५
१५–२० वें मिनट तक	११	११

पके चावल में विटामिन 'बी,'

पकाने पर चावल में उपस्थित इस विटामिन की मात्रा और भी कम हो जाती है। प्रत्येक प्रांत, जिले और घर में चावल विभिन्न तरीकों से पकाए जाते हैं इसलिए इस विषय पर कोई निश्चित पारिमाणिक अनुपात देना कठिन है। निम्न प्रकार से

पकाए गये चावलों में उत्पन्न हुई इस विटामिन की कमी का अध्ययन किया गया है:—

पहले लगभग ३॥ छटाँक चावल तीन बार, हर बार लगभग ५॥ छटाँक पानी के साथ, कुल पाँच मिनट तक धोया गया। इसके बाद यह चावल लगभग १॥ सेर उबलते हुए पानी में पकने के लिए छोड़ दिया गया। ठीक पक जाने के बाद माँड़ निकाल दिया गया जो कि लगभग सेर भर था। इस भाँति पके चावलों, धोवन और माँड़ में उपस्थित विटामिन 'बी,' इस भाँति था:—

(विटामिन 'बी,' माइक्रोग्राम प्रति ग्राम)

चावल	बगैर पकाये पके चावल में	पकाए गए चावल में	प्रतिशत विटामिन उपस्थित		
			पके चावल में	माँड़ में	धोवन में
अरवा चा० घर का कुटा	२.३	०.७	३३	३३	३३
अरवा चा० मशीन का कुटा	०.६	०.१	१५	३०	५५
उसना चा० घर का कुटा	२.५	१.६	६०	३०	१०
उसना चा० मशीन का कुटा	२.१	१.०	४५	१५	४०

इस भाँति यह स्पष्ट है कि पकाने और धोने से कच्चे चावल में उपस्थित विटामिन का अधिकांश भाग धोवन और माँड़ में निकल जाता है। लगभग केवल ३५ प्रतिशत पके चावल में रह जाता है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उसना चावलों की अपेक्षा अरवा चावलों में उपस्थित विटामिन अधिक आसानी से धोवन में निकल जाता है।

इस विषय को हमने काफ़ी विस्तार के साथ दिया है जिसका कारण हम पहले ही बता चुके हैं।

दाल वर्ग

अरहर, मसूर, चना, मूंग, उड़द, मटर आदि दालों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। इनमें उपस्थित प्रोटीन की ओर हम प्रारम्भ में संकेत कर चुके हैं। अपने इसी गुण के कारण शाकाहारियों के भोजन में दाल का विशिष्ट स्थान है। दालों में गेहूँ की अपेक्षा लगभग दो गुनी और चावल से चौगुनी प्रोटीन होती है। अनाजों की अपेक्षा दालों की प्रोटीन अच्छी होती है परन्तु दूध और मांस आदि में उपस्थित प्रोटीन से मध्यम। जिन मनुष्यों का चावल प्रधान आहार है—उनके लिये तो दाल का प्रयोग अपरिहार्य्य है।

प्रोटीन की आवश्यकता के लिये केवल दाल पर ही निर्भर रहना उत्तम नहीं। वनस्पति जन्य प्रोटीनों के साथ थोड़ी सी मात्रा पशुजन्य प्रोटीन की भी आयश्यक है।

दालों में उपस्थित प्रोटीन का अधिकतम् लाभ उठाने के लिये उन्हें प्रयोग करते समय भली भांति पका लेना चाहिये। इनके उपयोग का सब से उत्तम उपाय तो इन्हें आटे के रूप में पीस कर—गेंहू के आटे के साथ मिला कर रोटी बनाकर खाने का है। परन्तु चावल के साथ तो दाल को पानी में पका कर ही प्रयोग करना पड़ता है।

दली हुई दालों की अपेक्षा साबित दालें उत्तम होती हैं। और धुली हुई दाल की अपेक्षा छिलके दार। अरहर और मूंग की दालें सबसे उत्तम होती हैं।

प्रायः सभी दालों में कैलशियम, सोडियम तथा क्लोरीन की मात्रा कम होती है। परन्तु लौह और स्फुर की अधिक। दालों

में विटामिन 'बी' अधिक होता है, परन्तु छिलका उतर जाने के बाद इसकी मात्रा कम हो जाती है। दालों में विटामिन 'ए' और 'सी' नहीं होते। परन्तु विटामिन 'सी' दालों में आसानी से उत्पन्न किया जा सकता है। इसका उपाय सर रॉबर्ट मेककेरीसन ने अपनी 'भोजन' नामक पुस्तक में बताया है—

साबित दालें, चना, गेहूँ, साबित मटर या अन्य कोई अनाज पहले २४ घंटे तक पानी में भीगने देना चाहिए। इसके बाद पानी में से निकाल कर इन्हें या तो गीली जमीन अथवा किसी साफ़ कम्बल या टाट के गीले टुकड़े पर फैला दो और ऊपर से उन्हें किसी गीले कपड़े या गीले टाट से ढक दो और इसे निरन्तर गीला रक्खो। ऐसा करने के लिए बार बार पानी छिड़कना आवश्यक होगा। दो तीन दिन में अँकुए फूट निकलेंगे और प्रयोग करने के लिए तैयार हो जायेंगे।

इस भांति जमाए हुए अँकुए सहित अनाज को कच्चा ही खाना चाहिए और यदि पकाना आवश्यक समझा जाये तो कभी भी १० मिनट से अधिक नहीं पकाना चाहिए।

इस भाँति जमाए हुए अन्न में १०-१५ मिलीग्राम विटामिन 'सी' प्रति १०० ग्राम अन्न में हो सकता है। इस भाँति उगे हुए दानों में विटामिन 'ए' भी उत्पन्न हो जाता है। साथ ही दाल का स्वाद भी अच्छा हो जाता है।

सोयाबीन

अन्य दालों की अपेक्षा सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा सबसे अधिक होती है। वसा का परिमाण भी इसमें अधिक होता है, परन्तु कर्बोज की मात्रा कम होती है।

कन्द-मूल फल और मेवे

जैसा कि शीर्षक से प्रत्यक्ष है—इस प्रकरण में हम प्रकृति से प्राप्त होने वाले कन्द-मूल और फलादि का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

आलू

आलू भारतवर्ष की वस्तु नहीं है। हमारे देश में इसका आगमन योरोप से हुआ है। वहाँ यह दक्षिणी अमेरिका के पीरू तथा बोलिविया प्रान्तों से लाया गया था। योरोप में इसका प्रथम आगमन लगभग सन् १५७२ ई० के आस-पास हुआ था इँगलैंड में सन् १५८६ ई० में सर वाल्टर रैले इसको लाया था (?)

आलू के तीन भाग होते हैं—

१—छिलका	...	२॥ प्रतिशत
२—छिलके के नीचे का भाग	...	८॥ प्रतिशत
३—गूदा	...	८६ प्रतिशत

आलू के छिलके और छिलके के नीचे के भाग में प्रोटीन, वसा और खनिज की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। आलू छीलने पर ये मूल्यवान पदार्थ बेकार निकल जाते हैं। आलू का प्रोटीन पानी में शीघ्र ही घुल जाता है, अतः इसे ऐसा उबालना

चाहिये कि उसका छिलका फटने न पाये वरन् उसका प्रोटीन, खनिज और विटामिन पानी में घुल कर कम हो जायेंगे।

आलू में स्टार्च (श्वेतसार) प्रधान पदार्थ है। व्यापारिक दृष्टि से इसीलिये आलू का विशेष महत्व है।

आलू में उपस्थित खनिज पदार्थों में पोटेशियम के संयोगिकों की मात्रा सबसे अधिक है। पोटेशियम का अधिकांश साइट्रिक अम्ल के संयोगिक के रूप में उपस्थित है।

आलू में अन्य विटामिनों की अपेक्षा विटामिन 'सी' की मात्रा अधिक होती है। परन्तु अधिक भूनने, उबालने तथा रखने पर इसकी मात्रा घट जाती है। १०—५३ मिलीग्राम विटामिन 'सी' प्रति १०० ग्राम आलू में हो सकता है।

आलू में काष्ठौज बहुत कम होता है, इसलिये पकाये जाने के बाद आँतों में यह सुगमता से पचकर हज़म हो जाता है।

आलू का प्रयोग हम लोग आमतौर से सूखे या रसेदार साग के रूप में करते हैं। इसको पीस कर पूड़ी और पराठों में भरा जाता है। यह इसके प्रयोग का एक उत्तम उपाय है। आलू के पापड़ और चिप्स आदि भी बहुत बनाये जाते हैं। आलू की टिकिया बहुत स्वादिष्ट बनती है।

शक़रक़न्द

यह आलू की ही जाति का है। गर्म देशों में इसकी खेती होती है। आलू की अपेक्षा इसमें कैरोटीन और काष्ठौज अधिक है। कैरोटीन विटामिन 'ए' का प्रवर्त्तक है।

ज़मीकन्द

यह भी गर्म देशों में पैदा होता है। आकार में बहुत बड़ा होता है। पोषण शक्ति की दृष्टि से यह भी आलू के ही समान है। ज़मीकन्द और शकरकन्द का रासायनिक संगठन इस भाँति है—

	प्रोटीन	वसा	कर्बोज	खनिज
ज़मीकन्द—	१.६	०.५	२२.५	०.७
शकरक़न्द—	२.२	०.५	१५.३	१.५

शलग़म

शलग़म के रासायनिक उपादानका चित्राङ्कन चित्र सं० ३२ में देखिये—

चित्र सं० ३२

इसमें जल की मात्रा बहुत अधिक है। प्रोटीन केवल नाम मात्रको है। कर्बोज की मात्रा अन्य सब मूल अवयवों की अपेक्षा अधिक है। इतने पर भी इसमें कर्बोज केवल ५ प्रतिशत ही होते हैं। इसमें से भी अधिकांश काष्ठौज के रूप में होता है-जो सुगमता से हमारे शरीर के काम नहीं आ सकता।
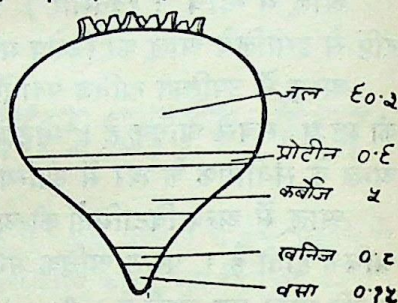
इस भाँति यह स्पष्ट है कि यह कदापि उत्तम खाद्य पदार्थों की श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता। कची दशा में २६ मिलीग्राम विटामिन 'सी' प्रति १०० ग्राम शलगम में होता है।

गाजर

गाजर अपेक्षाकृत उत्तम खाद्य पदार्थ है। इसमें शर्करा की मात्रा ५.४ प्रतिशत है। प्रोटीन इसमें भी विलकुल ही नहीं होती। गाजर सुगमता से हज़म नहीं होती।

गाजर में कैरोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है। यही पदार्थ गाजर के पीले रंग के लिये भी उत्तरदायी है। इसीलिये गाजर को अंगरेजी में कैरट और इसमें उपस्थित इस पदार्थ को कैरोटीन कहते हैं। कैरोटीन से हमारे शरीर में विटामिन 'ए' बनता है। गाजर में १९००-६५०० यूनिट विटामिन 'ए' प्रति १०० ग्राम के हिसाब से पाया जा सकता है।

चुक़न्दर

चुक़न्दर में उपस्थित शर्करा १५ प्रतिशत तक हो सकती है। प्रोटीन की दृष्टि से यह भी बिलकुल बेकार है। इसमें काष्ठौज की मा..ा अधिक होती हैं।

प्याज़

प्याज़ का अधिकतर प्रयोग उसकी सुगन्धि के लिये किया जाता है। और इस भांति प्याज़ का महत्व भोजन की अपेक्षा मसाले की दृष्टि से अधिक है।

साबूदाना

एक पेड़ के तने के गूदे से बनाया जाता है। एक पेड़ से लगभग ६ मन साबूदाना बनता है। इसमें लगभग ८६.७ प्रतिशत श्वेतसार रहता है। यह सुगमता से पचता है—इसलिए इसका प्रयोग रोगी दशा में पथ्य के ही रूप में अधिक होता है।

फल

फल पेड़ पौधों की वंशवृद्धि के साधन हैं। फलों के द्वारा बीजों का प्रसार और वितरण होता है। जब कोई पक्षी या प्राणी फलों को खाता है—तो उसका बीज फेंक देता है। यह बीज उपयुक्त समय और सुविधा पाकर नये पौधे के रूप में निकलता है।

इसलिये पक्षियों और प्राणियों को फलों की ओर आकृष्ट करने के लिये प्रकृति ने फलों को सुन्दर रूप, रंग, सुगंधि तथा स्वाद दिया है। पोषण पदार्थों की अपेक्षा इन्हें प्रधानता दी गई है।

फलों का रासायनिक संगठन लगभग इस भाँति होता है—

जल	८५ से ६० प्रतिशत
प्रोटीन	०.५ ,,
वसा	०.५ ,,

कर्बोज	५॥ से १०॥ प्रतिशत
काष्ठौज	२॥ „
खनिज	०.५ „

विभिन्न फलों का अलग अलग रासायनिक विश्लेषण परिशिष्ट में दी गई तालिकाओं में दिया गया है।

भोजन की दृष्टि से फलों में केवल कर्बोज की ही थोड़ी बहुत मात्रा होती है। फलों में विशेष कर पकी हुई अवस्था में उपस्थित सभी कर्बोज शर्करा के रूप में होता है। काष्ठौज की मात्रा विभिन्न फलों में अलग अलग होती है। पकने पर काष्ठौज की मात्रा कम हो जाती है।

फलों में उपस्थित खनिज पदार्थों में प्रधानतया पोटेशियम के संयोगिक ही अधिक मात्रा में होते हैं। साइट्रिक, टारटरिक तथा मैलिक अम्लों के साथ पोटेशियम के ये यौगिक शरीर में पहुँच कर क्षार पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं और रक्त की प्रतिक्रिया को अम्लीय होने से रोकते हैं।

जब फल पकते हैं तो उनमें उपस्थित अम्लों की मात्रा कम हो जाती है और श्वेतसार शर्करा में परिवर्तित हो जाता है। इसी लिये पकने पर फल मीठे हो जाते हैं।

ताजे फलों में विटामिनों की प्रचुरता रहती है—विशेष कर विटामिन 'सी' की। इसका विस्तृत विवेचन हम विटामिन के प्रकरण में कर चुके है

फलों में उपस्थित सुगंध आदि का यद्यपि पोषण की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं—तब भी इनकी उपस्थिति हमारे लिये लाभदायक ही है। ये भोजन की रुचि को बढ़ा कर भूख उत्पन्न करते हैं।

फलों में उपस्थित अम्लादि पदार्थ हमारी आँतों पर विरेचक प्रभाव करते हैं जिससे कि मलावरोध भी नहीं होने पाता।

अधिक कच्चे फलों में अम्लों की मात्रा अधिक होने के कारण और साथ ही काष्ठौज की उपस्थिति से कभी कभी दस्त आने की संभावना हो सकती है।

पोषण की दृष्टि से हम फलों को दो वर्गों में रख सकते हैं।

(१)—वे फल जिनमें जल का अंश ८० प्रतिशत से अधिक होता है जैसे कि संतरा, नीबू, नारंगी, अनार आदि। इनमें थोड़ी सी शर्करा और विटामिन 'सी' के अतिरिक्त जल का परिमाण ही अधिक रहता है।

(२)—वे फल जिनमें २० प्रतिशत से अधिक ठोस पदार्थ होते हैं। केला इस वर्ग का अच्छा उदाहरण है। शक्ति (कैलोरी) की दृष्टि से ये नगण्य नहीं।

अंगूरों का स्थान इन दोनों के बीच का है। इनमें १०-३० प्रतिशत तक शर्करा (द्राक्षौज) उपस्थित होती है। अंगूर में विटामिन नहीं पाये जाते।

चित्र सं० ३३

केला उष्ण कटिबन्ध का फल है। इसका फल १ छटाँक से २॥ छटाँक तक का होता है। केले में उपस्थित कर्बोज की मात्रा २२.७ प्रतिशत होती है। इसमें विटामिन 'सी' भी प्रचुर परिमाण में रहता है। विटामिन 'ए' और 'बी' भी रहते हैं। कच्ची अवस्था में इसमें उपस्थित समस्त
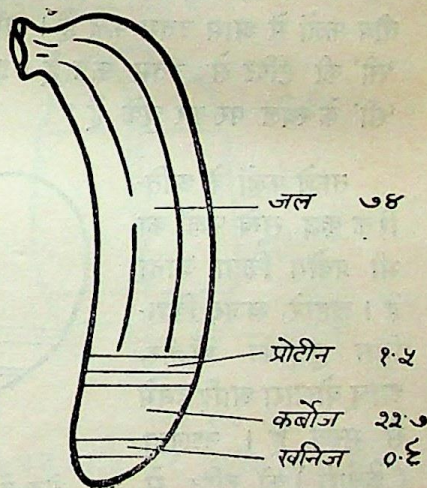
कर्बोज श्वेतसार के रूप में रहता है। इसलिए यदि इसका प्रयोग कच्ची अवस्था में ही किया जाये तो पकाना आवश्यक है। पक जाने पर श्वेतसार शर्करा में परिणत हो जाता है।

केला रोगियों और शिशुओं के लिए उत्तम आहार है। अमेरिका और कनाडा में बच्चे को तीन महीने का होते ही पका केला देने लगते हैं। इंगलैंड में ६ महीने की आयु के बाद से इसे बालकों को देते हैं। छोटे बालक इसे बड़े चाव से खाते हैं और यह उनके लिए लाभकर भी है। जीर्ण अतिसार के रोगियों को भी केला लाभ के साथ दिया जाता है। इन सब को केवल अच्छी तरह पका हुआ केला ही देना चाहिए।

कच्चे केले को सुखाकर उसका आटा भी बनाया जाता है।

अन्य सभी फलों का विस्तृत वर्णन यहाँ सम्भव नहीं। भारतीय फलों में आम उत्तम फल है। आँवले और अमरूद विटामिन 'सी' की दृष्टि से उतम फल हैं। इनका वर्णन हम विटामिन 'सी' के स्थल पर कर चुके हैं।

ताजे फलों के अतिरिक्त कुछ सूखे फलों का भी प्रयोग किया जाता है। छुहारे, खजूर, किशमिश मुनक्का अँजीर, आलू बोखारा आदि इनमें से मुख्य हैं। उष्णता (कैलोरी) की दृष्टि से ये उत्तम फल हैं।
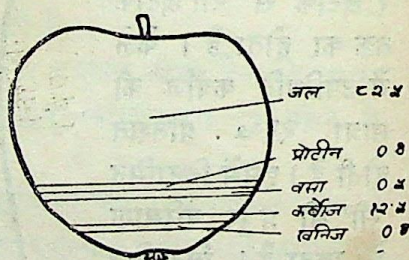
चित्र सां०—३४
सेव में प्रस्थित मूल अवयवों का पारिमाणिक चित्रांकन

खजूर

का तो मिश्र में उसी तरह प्रचार है जैसेकि चावल का भारतवर्ष में। इसमें उपस्थित सभी कर्बोज शर्करा के रूप में ही होता है।

अंजीर

सूखे हुये अञ्जीर में लगभग ५० प्रतिशत से अधिक कर्बोज, ३-४ प्रतिशत प्रोटीन तथा काफी परिमाण में कैलशियम होता है।

मेवे

इनमें से प्रधान अखरोट, काजू, बादाम, पिस्ता, चिलगोजा और मूंगफली आदि हैं। शक्ति (कैलोरी) की दृष्टि से ये उत्तम खाद्य पदार्थ हैं। नीचे अखरोट में उपस्थित भोजन के मूल अवयवों का चित्रांकन किया गया है—

चित्र सं० ३५

इस चित्र से स्पष्ट है कि इनमें वसा की कितनी अधिक मात्र होती है। वास्तव में वनस्पति जगत में वसा में सबसे धनी पदार्थ ये मेवे ही हैं। इनमें प्रोटीन भी प्रचुर परिमाण में रहती है—और भाग्यवश यह होती भी उत्तम श्रेणी की है। इस भाँति १/२ छटाँक मेवों में १/२ छटाँक अण्डे में उपस्थित प्रोटीन से अधिक प्रोटीन और लगभग पांच गुना अधिक वसा होती है। इनमें विटामिन 'बी' भी
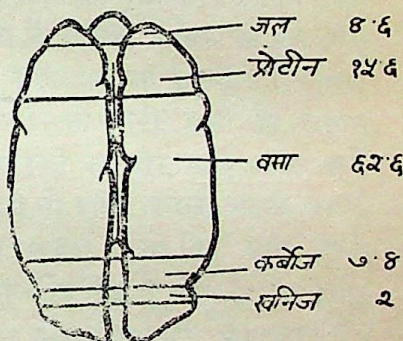
प्रचुर मात्रा में होता है। विटामिन 'ए' बहुत कम और विटामिन 'सी' बिलकुल भी नहीं होता।

परन्तु दुर्भाग्यवश मेवे सुगमता से हजम नहीं किए जा सकते। इसलिए इनका अधिक खाना सम्भव नहीं। प्रोटीन और वसा की इतनी प्रचुरता ही इनमें ये दोष भी उत्पन्न कर देती है। इसलिए इन्हें बहुत अधिक नहीं खाना चाहिए। और खाते समय भली प्रकार चबा कर तब निगलना चाहिए।

बादाम, अखरोट, काजू आदि आजकल साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर की वस्तु बन गये हैं। यहाँ हम यह बताना चाहेंगे कि जहां तक इनके गुणों का प्रश्न है—मूँगफली इन्हीं के टक्कर की है। और साथ ही कितनी भी महँगी हो सभी इसे खरीद सकते हैं। भारतवर्ष में यह पैदा भी बहुत होती है।

शाक-भाजी
और
उनका उपयोग

हमारे समाज के बहुत से परिवारों में भोजन के सम्बन्ध में भी उतनी ही संकीर्णता बरती जाती है, जितनी कि रहन-सहन की अन्य बातों में। शाक-भाजी के अधिक प्रयोग को ऐसे लोग बहुधा फैशन अथवा जीभ का चटोरापन कह देते हैं। ऐसे परिवारों में साग सब्ज़ी,तरकारी आदि को रोटी खाने का साधन मात्र माना जाता है। इन वस्तुओं का और कोई महत्व इन्हें मालूम नहीं। और क्यों कि रोटी तो दाल, अचार, चटनी, नमक, मिर्च और गुड़ से भी खाई जा सकती है, तो फिर साग सब्ज़ी में पैसा फेंकना फैशन नहीं तो और क्या? उनकी इस विचार धारा का मुख्य कारण उनका इस विषय सम्बन्धी अज्ञान ही है।

साग बनाने के लिए विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग होता है।

(१) कन्द-मूल—जैसे आलू, गाजर, शलगम, मूली, घुइयां आदि। इनकी विस्तृत विवेचना हम कर चुके हैं।

(२) फल-फूल—जैसे परवर, तोरई, टिंडे, केले, पपीता, टमाटर, कद्दू, लौकी, गोभी का फूल आदि।

(३) कृत्रिम वर्ग—इससे हमारा अभिप्राय उन सब पदार्थों से है—जो कि वास्तव में साग-सब्जी तो नहीं होते, परन्तु उनसे जबरदस्ती इनका काम लिया जाता हैं। इनके लिये बेसन और दाल से बनी हुई चीजें बहुधा प्रयोग की जाती हैं। जैसे कि कढ़ी, बड़िया, मंगौड़ी आदि। ये पदार्थ कदापि साग-भाजी का स्थान नहीं ले सकते। हाँ इनकी सहायता से किसी तरह रोटी निगल कर पेट अवश्य भर लिया जाता है।

(४) शाक-भाजी—हरे पत्ते वाले साग जैसे चने का साग, पालक, बथुआ, मेथी, चौलाई, सरसों का साग, मूली के पत्ते, करमकल्ला, आदि। इस प्रकरण में इन्हीं के विषय में कुछ विस्तृत विवेचन किया गया है—

हरी शाक-भाजी में विटामिन और खनिज दोनों की प्रचुरता रहती है। ऐसा कोई विरला ही शाक होगा, जिसमें एक, दो या इनसे अधिक विटामिन न हों। खनिज पदार्थ तो प्रायः सभी में होते हैं।

विटामिन 'ए'—में विशेष धनी साग निम्न हैं:—करमकल्ला या बन्दगोभी, चने का साग, खेसारी, लाल चौलाई, धनिया, पुदीना, पालक, मेथी, सलाद, सहजन, अजवायन के पत्ते, नीम (फुनगी)।

विटामिन 'बी'—करमकल्ला, चौराई, पालक, मेथी, सलाद, सहजन, तथा लगभग अन्य सभी सागों में पाया जाता है।

विटामिन 'सी'—के लिये चौराई, करमकल्ला; धनिया, सैंजन, पालक बहुत उपयोगी हैं।

विटामिन 'ई'—विशेषकर सलाद में अधिक होता है।

विटामिन 'के'—पालक, करमकल्ला तथा अन्य हरी शाक-भाजियों में पाया जाता है।

खनिज—हरी शाक-भाजियों में सोडियम तथा पोटैशियम के लवणों की प्रचुरता रहती है। हमारे शरीर के लिये सबसे आवश्यक खनिज लोहा है। ये हमारे रक्त में उपस्थित 'हीमोग्लोबिन' के निर्माण के लिये बहुत आवश्यक है। इस दृष्टि से विशेष धनी साग—

चने का साग, नीम की फुनगी, चौराई, मेथी, पुदीना, सरसों का साग, पालक, धनिया, गाजर की पत्तियाँ आदि हैं।

विटामिन और खनिज के अतिरिक्त एक और पदार्थ सभी हरी शाक भाजियों में उपस्थित रहता है। इसे 'क्लोरोफ़िल' कहते हैं। यही इन वस्तुओं के हरे रंग के लिये उत्तरदायी है। ये पदार्थ भी 'हीमोग्लोबिन' (रक्त में उपस्थित लाल पदार्थ) के निर्माण से सम्बन्धित है।

जब हम हरी शाक-भाजी खाते हैं—तब इनके पचने के बाद भी इनके रेशे इतने काफ़ी परिमाण में हमारी आँतों में बच रहते हैं—कि वे केवल अपने परिमाण और उपस्थिति के कारण ही आँतों की गति को बल प्रदान करते हैं—और इस भाँति इनके प्रयोग से कब्ज़ नहीं होने पाता। मलावरोध के रोगियों के लिये हरे शाक उत्तम औषधि हैं।

भोजन में मांस, अंडा, दाल, अनाज आदि की अधिकता से हमारे तन्तुओं की प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति अम्लीय होने लगती

है। हरे पत्ते वाले साग, करमकल्ला, पालक आदि क्षार उत्पन्न करते हैं। अतएव स्मरण रखना चाहिये कि जो लोग मांस, मछली, अंडा आदि अधिक खाते हैं—उन्हें अपने भोजन में शाक-भाजी को भी उचित स्थान देना चाहिये। इससे रक्त में अम्लत्व की प्रवृत्ति रुकेगी और उसकी प्रतिक्रिया ठीक रहेगी।

इस भाँति हरी शाक-भाजी के मुख्य गुण निम्न हैं—

(१) विटामिनों की प्रचुरता
(२) खनिज पदार्थों की उपस्थिति
(३) क्लोरोफिल
(४) रेशे बचने के कारण मलावरोध न होने देना
(५ रक्त की अम्लीय प्रवृत्ति को रोकना।

प्रयोग करने के उपाय—हमारे परिवारों में इनके प्रयोग करने के बहुत से उपाय प्रचलित हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) सलाद— बगैर पकाये हुये ही कच्ची और ताज़ा दशा में इनका उपयोग। इसके लिये सलाद, मूली की पत्ती, धनिये आदि का उपयोग नींबू, नमक मिर्च आदि मिलाकर किया जाता है। साथ में टमाटर, अमरूद, मूली, गाजर आदि भी काटकर मिलाये जा सकते हैं।

यह इन वस्तुओं के प्रयोग करने का सर्वोत्तम उपाय है। परन्तु हमारे परिवारों में अभी इसका प्रचार नहीं है। केवल मेहमानों के स्वागत के साधन के लिये कभी कभी इनसे सजी हुई प्लेट के दर्शन होते हैं।

इस भाँति प्रयोग करने से इनमें निहित विटामिनों का अधिक से अधिक भाग हमारे काम आ जाता है। इनके

इस तरह कच्ची अवस्था में प्रयोग करते समय कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिये—

पहली—जहाँ तक हो सके इन वस्तुओं का उपयोग ताज़ी दशा में ही करना चाहिये। रखने और बासी होने से इनमें निहित विटामिनों की मात्रा कम हो जाती है—विशेषकर विटामिन 'सी' की।

दूसरा—प्रयोग करने से पहले इन वस्तुओं को भली प्रकार बीनकर साफ कर लेना चाहिये जिससे कि आँख से दिखाई देने वाले कीड़े-मकोड़े निकल जायें। तत्पश्चात् नल के नहते हुये पानी में कई बार अच्छी तरह से धोकर कुयें की दवा के हलके लाल रंग के घोल में डालकर कुछ घंटे उसमें पड़े रहने देना चाहिये। ऐसा करने से इन पत्तों में लगे हुये कीटाणु मर जायेंगे। बहुधा इन पत्तों में आन्त्रिक ज्वर। मियादी बुखार विशूचिका (हैजा) तथा पेचिश के कीटाणु लगे रहते हैं। इनके अलावा कुछ कृमियों के अंडे भी रह सकते हैं। भली प्रकार साफ करके उपयोग करने पर इनका कोई भय नहीं रह जाता है।

(२) चटनी—दूसरा उपाय इनको पीसकर चटनी के रूप में व्यवहार करने का है। (जैसे पुदीना, धनिया आदि) यहाँ भी इनका उपयोग कच्ची अवस्था में ही होता है। अतः ये उपाय भी उत्तम है। साथ हो इस रूप में ये रुचिकर और भूख बढ़ाने वाले होते हैं। परन्तु चटनी अधिक मात्रा में नहीं खाई जा सकती। सफ़ाई के बारे में उन सभी बातों का ध्यान रखना होगा जो कि पहले बताई जा चुकी हैं।

(३) रायता—रायते के लिये बहुधा पालक, बथुआ

मेथी, आदि का उपयोग होता है। रायता बनाने से पहले इन्हें साफ़ करके हलका सा उबाला जाता है। यहाँ एक बात विशेष ध्यान रखने की है। इन वस्तुओं के उबालते समय इनमें केवल इतना ही पानी डालना चाहिये- जिससे कि बाद में फेंकना न पड़े। जल के केवल नाममात्र के अंश से ही उसकी भाप में ये वस्तुयें काम के लायक गल जाती हैं। यदि उबालने के बाद पानी फेंका जायेगा तो उसके साथ खनिज तथा विटामिनों की काफ़ी मात्रा निकल जायेगी।

(४) चौथा उपाय इन शाक-भाजियों को हल्का सा उबाल कर रोटी के बीच में भरकर प्रयोग करने का है। यह भी अच्छा तरीका है। ऐसा करने से खनिज और विटामिन तो मिलते ही हैं साथ ही रोटी स्वादिष्ट और रुचिकर हो जाती है। कब्ज़ के रोगियों के लिये ये उत्तम उपाय है।

(५) घोंटा—ये बहुधा पालक का बनाया जाता है इसे महीन-महीन काटकर चार दाने (थोड़े से) चावलों के साथ थोड़े से पानी में चढ़ाकर सब पानी सुखा देते हैं। तत्पश्चात् इसे खूब घोंटा जाता है बाद में थोड़ा सा बेसन पतला घोलकर मिलाकर पका लेते हैं। नमक मिर्च, अदरख, आदि रुचि के अनुसार डालकर जीरे, हींग आदि से छौंक लेते हैं।

ये खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। खनिज प्रचुर मात्रा में रहते हैं। सरसों और चने के साग का घोंटा हमारे देहातों में बहुत प्रचलित है।

(६) सकपैता—हरे साग के पत्तों को काटकर उड़द या मूंग की दाल में डालकर पका लेते हैं। इसे दाल की ही भाँति छौंकते हैं। इसे देहातों में सकपैता कहते हैं। इसमें भी खनिज उपस्थित रहते हैं।

(७) भुजिया—इसमें इन सागों को आलू या अन्य किसी ऐसी ही चीज़ के साथ इतना भूना जाता है कि उसमें निहित जल का अधिकांश भाग जल जाता है। इस भाँति बनाने से लगभग सभी विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

(८) चाट, पकौड़ी आदि—पालक वग़ैरह के पत्तों को बेसन में लपेट कर घी या तेल में तलकर प्रयोग करते हैं। इस भाँति खाई गई चीज़ों में सागों की इतनी अल्प मात्रा होती है कि इसका कोई विशेष महत्व नहीं है।

(९) सुखाकर—गाँवों में बहुधा मेथी या चने के साग आदि को सुखाकर रख लेते हैं और फिर आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग करते हैं। विटामिन की दृष्टि से ये बिलकुल बेकार रहते हैं। खनिज और रेशे तो फिर भी रह ही जाते हैं।

इन उपायों के अलावा और भी बहुत से तरीके हरी शाक-भाजी के प्रयोग के लिये प्रचलित हैं। पर वे सभी इन्हीं में से किसी न किसी के रूपान्तर हैं।

इस भाँति हरी शाक-भाजियों का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिये निम्न बातें बहुत ज़रूरी हैं—

(१) जहाँ तक हो सके कच्ची और ताज़ी चीज़ों का प्रयोग।

(२) सफ़ाई

(३) यदि उबालना आवश्यक हो तो केवल इतना ही पानी डाला जाये कि फेंकना न पड़े।

(४) अधिक देर तक उबालने या भूनने से इनमें उपस्थित विटामिनों की मात्रा घट जाती है।

(५) इन्हें बनाते समय यदि थोड़ा सा ध्यान रक्खा जाये तो ये बहुत स्वादिष्ट बनाये जा सकते हैं। जिससे कि रुचिपूर्वक इनका अधिक से अधिक उपयोग किया जा सकता है।

(६) अतिसार (दस्त) और पेचिश आदि के रोगियों द्वारा इनका उपयोग कभी-कभी अधिक दस्त लाने का कारण बन सकता है।

मिर्च-मसाले

यद्यपि ये पदार्थ न तो हमारे शरीर को शक्ति ही पहुँचाते हैं और न किसी प्रकार उसके तन्तुओं के निर्माण के लिये ही आवश्यक हैं—परन्तु फिर भी इनका प्रयोग प्रायः सभी देशों और जातियों में पाया जाता है। कहीं कम तो कहीं अधिक। भारतवर्ष में इनका अधिक प्रयोग दक्षिण भारत, मारवाड़ी परिवारों तथा पंजाब में होता है। ये चीजें भोजन को अधिक आकर्षक और रुचिकर बनाने के लिये प्रयोग की जाती हैं। विभिन्न वस्तुओं के भिन्न-भिन्न गुणों का उपयोग हम भोजन को आकर्षक बनाने के लिये करते हैं।

(१) सुगन्ध के लिये—हींग, जीरा, धनिया, लहसन प्याज़, इलायची, दालचीनी, तेजपात, लौंग, जायफल, केशर आदि का प्रयोग होता है।

(२) स्वाद के लिये—काली और लालमिर्च, भाँति-भाँति की खटाई आदि।

(३) रंग रूप के लिये—जैसे हल्दी, केशर आदि इसके अतिरिक्त मसालों का प्रयोग खाद्य पदार्थों को अधिक दिन तक सुरक्षित रखने के लिये भी किया जाता है। भाँति-भाँति के

अचार और मुरब्बे अगली फसल के आने तक रक्खे और प्रयोग किये जाते हैं।

प्रत्येक पदार्थ में जहाँ गुण होते हैं वहाँ बुराइयाँ भी होती हैं। मिर्च-मसालों का कतई प्रयोग नहीं होना चाहिये और दूसरी ओर मद्रासी लोगों की भाँति इनके प्रयोग की अति, दोनों ही ग़लत हैं।

मसालों के उचित प्रयोग से भोजन रुचिकर हो जाता है। उसे देखते या उसकी सुगन्ध पाते ही मुँह में पानी आने लगता है—और यहीं से पाचन-क्रिया का प्रारम्भ हो जाता है। भूख बढ़ जाती है। भोजन अधिक किया जा सकता है और सुगमता से पच भी जाता है—

परन्तु 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का सिद्धान्त यहाँ भी लागू होता है। मसालों का अधिक प्रयोग निश्चय ही हानिकारक है—

(१) अधिक मसाले—मुँह में चरपरे लगते हैं—इसलिये भोजन भली भाँति चबाये बिना ही जल्दी-जल्दी निगल लिया जाता है।

(२) इनकी अधिक तेज़ी के कारण बार-बार पानी पीना पड़ता है। इस भाँति भोजन भूख से भी कम किया जाता है। पानी से ही पेट भर जाता है।

(३) इनकी अधिकता से पेट में जलन होने लगती है। आँतों की श्लैष्मिक कला पर भी हानिकर प्रभाव होता है। और अपच तथा अजीर्ण हो सकता है।

(४) इनके लगातार अधिक प्रयोग करने पर आमाशय तथा आंतों की श्लैष्मिक कला का जीर्ण प्रदाह हो जाता है। दक्षिण भारत में उत्तर भारत की अपेक्षा आमाशयिक क्षत अधिक पाया जाता है। सम्भवतः वहाँ के निवासियों द्वारा मिर्च - मसालों का अधिक प्रयोग भी इसका एक कारण हो।

भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग-अलग मसालों का प्रचार है। उन सबका विस्तृत वर्णन यहाँ सम्भव नहीं। हम केवल थोड़े से खास-खास मसालों का संक्षिप्त विवरण यहाँ देंगे।

मिर्च—यह एक पौधे का फल है। कच्ची होने पर हरी और पक जाने पर लाल रंग की होती है। इसे कच्चा खाया जाता है। पकी मिर्च को सुखाकर कूटकर रख लेते हैं—ये मसाले के काम आती है। ताजी मिर्च का अचार भी डाला जाता है। बड़ी पहाड़ी मिर्च का साग बनाया जाता है।

इसका स्वाद चरपरा होता है। अल्प मात्रा में इसके प्रयोग से मुंह में लाला (लार) का स्राव बढ़ जाता है। आमाशयिक रस भी अधिक निकलने लगता है। आँतों का आंकुचन बढ़ जाता है। इस भाँति अल्प मात्रा में यह अग्निवर्धन करती है।

इसके अधिक उपयोग से बहुत उत्तेजना होती है। और इसका अधिक उपयोग निश्चय ही हानिकर है।

मिर्च में विटामिन 'सी' होता है। हरी मिर्च में सूखी मिर्च की अपेक्षा इसकी मात्रा अधिक होती है।

काली मिर्च—यह एक पेड़ के गोल फल से निकलती है। इसका रंग काला और स्वाद चरपरा होता है। यह लाल मिर्च की अपेक्षा कम हानिकर कही जाती है।

अमचुर—कच्चे आम को छीलकर काटकर सुखा लेते हैं। बाद में इसका प्रयोग भोजन में खट्टा स्वाद लाने के लिये करते हैं। बाजार में मिलनेवाला अमचुर बहुत गन्दा होता है। उसे बनाते समय सफ़ाई का ध्यान बिलकुल नहीं रक्खा जाता। अच्छा हो यदि प्रत्येक परिवार अपने आवश्यकता भर के लिये इसे फसल पर अपने घर में ही बना ले।

अनारदाना—इसका प्रयोग भी खटाई लाने के लिये होता है। इसकी खटाई अधिक रुचिकर और हल्की होती है।

हींग—इसके पेड़ की जड़ों में चीरा लगाकर यह निकाला जाता है। यह उस पेड़ का गोंद है। इसकी सुगन्ध बहुत तेज़ और स्वाद तीखा होता है। भून लेने पर इसकी सुगन्ध और अच्छी हो जाती है।

यह अग्निवर्धक, क्षुधाकारक तथा पाचक पदार्थ है। पेट में अधिक वायु को शान्त करती है—और अफारे के कष्ट को कम करती है। आयुर्वेदिक औषध 'हिंग्वाष्टक चूर्ण' में हींग प्रधान वस्तु है।

अधिक मात्रा में हींग वमनकारी प्रभाव करती है।

ज़ीरा—यह एक पौधे के छोटे-छोटे फल होते हैं। जीरा दो प्रकार का होता है। सफ़ेद और स्याह। इसका प्रयोग इसकी सुन्दर सुगन्ध के लिये किया जाता है। जल-जीरा पेट के अपच जनित विकारों की प्रचलित औषध है।

धनिया-सौंफ़-लौंग—आदि ये सभी पदार्थ अपनी सुगन्ध और इनमें उपस्थित तैलों के गुणकारी प्रभाव के लिये प्रयोग किये जाते हैं।

अदरक—यह एक पेड़ की जड़ है। इसको ताज़ी दशा में और सुखाकर प्रयोग करते हैं। यह क्षुधाकारक, अग्निवर्धक तथा लाला के स्राव को बढ़ाने वाला है।

दालचीनी—यह एक पेड़ की छाल है। लौंग की ही भाँति इसके गुण भी हैं। इसे चाय में मिलाकर बनाने से चाय की सुगन्ध और स्वाद और उत्तम हो जाती है।

सिरका—यह गन्ने जामुन या अंगूर आदि के रस से बनाया जाता है। कुछ रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप इनमें सिरकाम्ल उत्पन्न हो जाता है। इसी के उपस्थिति से इसमें तेज़ स्वाद और सुगन्ध आ जाती है।

सिरके के यदाकदा प्रयोग के लिये हमें कुछ नहीं कहना परन्तु अम्लाधिक्य तथा आमाशयिक-क्षत के रोगियों को तो इसका नाम भी नहीं लेना चाहिये।

इस भाँति मिर्च मसालों के बारे में याद रखने योग्य बातें हैं—

(१) इनका यदाकदा अल्प मात्रा में उपयोग लाभकर है।

(२) इनकी अति निश्चय ही हानिकर है।

(३) गले की खराबी, 'आमाशयिक प्रदाह, अम्लाधिक्य तथा आमाशयिक-क्षत आदि के रोगियों को तो इन्हें पास भी नहीं फटकने देना चाहिये।

चाय क़हवा और कोको

चाय, काफी और कोको आजकल सभ्य समाज के प्रधान पेय हैं। यहाँ तक कि चाय ने तो धीरे धीरे अब वह स्थान प्राप्त कर कर लिया है जो कि भारत में किसी समय दूध दही आदि का था। प्राचीन भारत में दूध दही एवं लस्सी आदि अतिथ्य सत्कार के प्रधान प्रसाधन थे। आजकल भी चाय के बिना आतिथ्य सत्कार अधूरा ही रह जाता है। चाय का प्रचार इधर कुछ वर्षों से भारत में तो इस द्रुत गति से हुआ है कि क्या ग़रीब और अमीर, भारत के प्रायः सभी वर्गों ने इसे समान रूप से अपनाया है। मध्यम श्रेणी का तो शायद ही कोई परिवार ऐसा बचा हो जहाँ दिन में कम से कम एक बार बारहों महीने चाय न बनती हो।

इस प्रकरण में हमारा उद्देश्य इन पेय पदार्थों का एक संक्षिप्त वैज्ञानिक विवेचन करने के बाद उनके विभिन्न गुणावगुणों का दिग्दर्शन कराकर यह निश्चय करने का प्रयत्न करना है कि ये पेय पदार्थ हमारे लिये हितकर हैं अथवा अहितकर।

चाय

योरोप में चाय का प्रवेश सर्वप्रथम सन १६१० ई० में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा हुआ था। उन दिनों पहले

पहल योरोप में इसका मूल्य १० गिन्नी प्रति पाउंड था। सबसे प्रथम योरोप में चाय चीन से जाती थी। तत्पश्चात् धीरे-धीरे इसका स्थान भारत की चाय ने और बाद में लंका ने ले लिया।

चाय का पौदा एक वर्ष में चार बार नई कोंपल देता है। और इसी समय इसकी पत्ती तोड़ी जाती है। चीन और जापान में सब से पहले बार की चाय सर्वोत्तम होती है।

चाय की श्रेष्ठता पत्ती की आयु पर निर्भर करती है- और इसी के अनुसार उसे विभिन्न नाम भी दिये जाते हैं। सबसे ऊपर की कोमलतम कोंपल सर्वश्रेष्ठ होती है। इसके अलावा चाय की श्रेष्ठता देश और स्थान पर भी निर्भर करती है। भारत में सर्वश्रेष्ठ चाय दार्जिलिंग के प्रदेश में उत्पन्न होती है।

पत्तियाँ एकत्र करने के उपरान्त उन्हें कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं के पश्चात् बाजार में बिकनेवाली चाय का रूप दिया जाता है। ऐसा करने से उसमें एक विशेष प्रकार का स्वाद और और सुगन्धि आ जाती है।

चाय पीते तो बहुत से लोग हैं -परन्तु अच्छी चाय की पहचान और उसके तैयार करने का सही तरीका बिरले ही ठीक ठीक जानते हैं। अच्छी चाय की पहचान सीजने के बाद चाय के पानी और बची हुई पत्तियों से की जाती है। अच्छी चाय के पानी का रंग कुछ सुनहला लाल सा होना चाहिये। उसकी सुगन्धि तीव्र किन्तु स्वाद कड़वा अथवा तीखा नहीं होना चाहिये। सीजने के बाद बची हुई चाय की पत्तियाँ चमकदार ताँबे के से रंग की होनी चाहिये और सबका रंग एक ही सा होना चाहिये ये नहीं कि कुछ गहरे रंग की हों और कुछ हलकी, सब पत्तियाँ समान आकार की होनी चाहिये और पाँच मिनट

सीजने के बाद पत्तियाँ पूरी तरह से खुलकर चपटी हो जानी चाहियें। पत्तियों के साथ शाखाओं और डंठलों के टुकड़े नहीं मिले होने चाहिये।

उपादान—चाय में उपस्थित पदार्थों में सब से मुख्य कैफ़ीन और टैनिन नामक पदार्थ और कुछ थोड़े से सुगन्धि युक्त तैल (½ प्रतिशत) हैं। और यही पदार्थ हमारे शरीर पर चाय के प्रभावों के लिये उत्तरदायी भी हैं। चीन की अपेक्षा भारत और लंका की चाय में उपर्युक्त पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं।

यदि चाय गरम पानी में पाँच मिनट तक सीजने दी जाये तो पत्ती का २५ प्रतिशत भाग पानी में घुल जाता है। इस भाँति घुले समस्त पदार्थों में कैफ़ीन और टैनिन मुख्य हैं। इन दोनों में कैफ़ीन इतनी अधिक घुलनशील है कि चाय को पानी में डालते ही कैफ़ीन का अधिकांश पत्ती में से निकल कर पानी में घुल जाता है। परन्तु टैनिन के साथ यह बात नहीं। चाय जितनी ही अधिक देर सीजने दी जाती है टैनिन की उतनी ही अधिक मात्रा पानी में घुलती जाती है। इस भाँति यदि चाय को ३ मिनट तक सीजने दिया जाये तो उसमें निहित कैफ़ीन का अधिकांश जल में विलीन हो जायेगा, परन्तु टैनिन की मात्रा बहुत कम होगी।

इतने समय के उपरान्त यदि चाय की पत्तियों को और अधिक देर तक सीजने दिया जायेगा तो चाय के पानी में उपस्थित कैफ़ीन की मात्रा में तो कोई विशेष वृद्धि नहीं होगी परन्तु टैनिन की मात्रा बहुत अधिक बढ़ती जायगी। जैसा कि चित्र सं०-३६ से स्पष्ट है। (यह चित्र ग्रीन के प्रयोगों के आधार पर बनाया गया है।)

चित्र सं० ३६
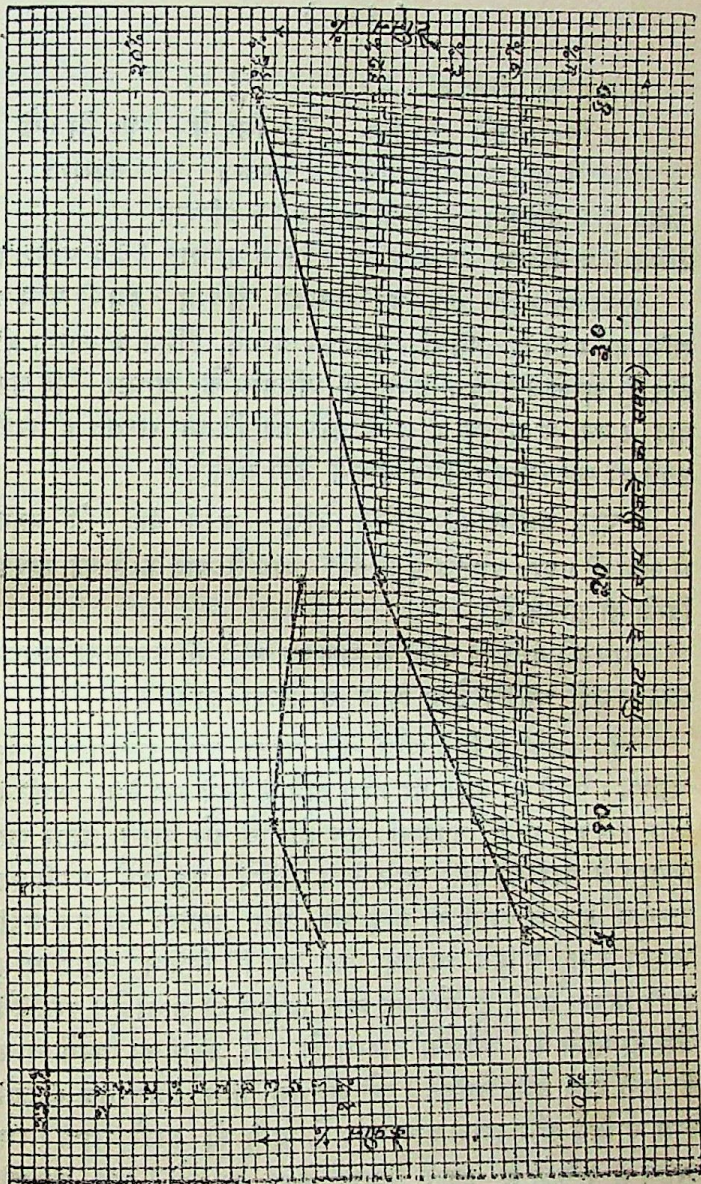
प्रयोगों का परिणाम :—

	५ मि० सीजने के बाद	१० मि० के बाद	२० मि० के उपरान्त	४० मि० के उपरान्त
कैफ़ीन	१.१ प्रतिशत	१.३ प्रतिशत	१.१६ प्रतिशत	—
टैनिन	६.८ प्रतिशत	८.५ प्रतिशत	१२.७ प्रतिशत	१६.३ प्रतिशत

जैसा कि आगे चल कर बताया जायेगा हमारी पाचन शक्ति पर चाय के अधिकांश हानिकर प्रभाव टैनिन के कारण ही होते हैं, इसलिये उपर्युक्त प्रयोग के परिणाम के आधार पर यह याद रखना आवश्यक है—कि चाय को जितना सम्भव हो सके उतने ही कम समय के लिये सीजने देना चाहिये।

चाय बनाने की उचित विधि—चाय पीते तो बहुत से लोग हैं। पर वास्तव में अच्छी चाय तैय्यार करने का रहस्य विरले ही जानते हैं।

चाय की पत्ती को पानी में डाल कर कभी भी उबालना अथवा पकाना नहीं चाहिये जैसा कि बहुधा किया जाता है।

चाय बनाने के लिये साफ़ और ताज़ा पानी इस्तेमाल करना चाहिये। पानी को आग पर गरम होने के लिये रख देना चाहिये और जैसे ही पानी उबलना शुरू होजाये उसे तुरंत उतार कर हिसाब से चाय की पत्ती डाल देनी चाहिये। एक दफ़े पानी का उबलना शुरू हो जाने के बाद उसे और अधिक देर तक नहीं उबलने देना चाहिये अन्यथा उस जल में निहित तमाम वायु बाहर निकल जाती है और वह स्वाद विहीन हो जाता है। इसलिये जैसे ही पानी का उबलना प्रारम्भ हो उसे उतार कर उसमें चाय की पत्ती डाल देनी चाहिये। इसे लगभग तीन मिनट तक सीजने देना चाहिये और इसके बाद चाय के पानी को दूसरे साफ गरम बरतन में पत्तियों से अलग निथार लेना चाहिये। बस अच्छी

चाय तैयार है। इसे इच्छानुसार दूध और शक्कर मिला कर प्रयोग किया जा सकता है।

एक आदमी के लिये एक छोटे (चाय का) चम्मच भर चाय के हिसाब से पत्ती डालनी चाहिये। चायको अधिक देर तक सीजने देने से उसमें टैनिन अधिक मात्रा में घुल जाता है, स्वाद कड़वा हो जाता है और उसकी सुगन्धि मन्द हो जाती है।

दूध जहाँ तक हो सके कुछ अधिक ही डालनो चाहिये क्यों कि चाय में उपस्थित टैनिन दूध की प्रोटीन से संयुक्त हो कर हानिकर प्रभावों से मुक्त हो जाती है।

एक बार प्रयोग की हुई चाय की पत्ती को दुवारा इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

कॉफी अथवा कहवा

इधर कुछ समय से कॉफ़ी का प्रचार भी बढ़ रहा है परन्तु अभी तक केवल बड़े बड़े शहरों में और वहाँ भी कुछ विशेष वर्गों तक ही सीमित है। सब से प्रथम कॉफ़ी अरब देश से लाई गई थी। परन्तु अब तो उष्ण कटिबन्ध के बहुत से देशों में इसकी खेती की जाने लगी है। भारत में दक्खिन में कॉफ़ी पैदा की जाती है। कॉफ़ी के पौदे का एवं बाज़ार में जिस रूप में कॉफ़ी आती है उसे तैयार करने के तरीके का वर्णन करने के लिये यहाँ हमारे पास स्थान नहीं है। हाँ इतना बता देना उचित है कि तैय्यार करने से पहले कॉफ़ी भूनी जाती है जिससे कि उसमें एक विशेष सुगन्धि युक्त पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। इसे 'कैफ़ियौल' कहते हैं, और कहवा में उपस्थित सुगन्धि इसी के कारण होती है।

कॉफ़ी को सीजने देने के उपरान्त उसका २५ ३५ प्रतिशत भाग जल में घुल जाता है। कॉफ़ी के एक प्याले में लगभग उतनी ही कैफ़ीन होती है, जितनी कि चाय के एक प्याले में।

अच्छी कॉफी तैयार करने के लिये कहवे की काफी मात्रा डालनी चाहिये और उसे गरम तैयार करना चाहिये। लगभग १ आउन्स कॉफी प्रति पाइन्ट (ढाई पाव) जल के हिसाब से डालनी चाहिये। केवल ताज़ा कहवा ही कॉफी बनाने के लिये प्रयोग करना चाहिये। अधिक दिन तक रखने से उसकी सुगन्धि कम हो जाती है। जिस पानी में कॉफी तैयार की जाय वह स्वच्छ, ताज़ा, और खौलता हुआ होना चाहिये।

कोको

सब से प्रथम सोलहवीं शताब्दी में स्पेनवासी मैक्सिको देश से कोको स्पेन में लाये थे। इसका प्रचार भी दिन पर दिन बढ़ रहा है। परन्तु केवल उच्च वर्ग में।

कोको में लगभग ५०.४ प्रतिशत वसा होती हैं जो तैयार करने के उपरान्त लगभग ३१ प्रतिशत ही रह जाती है। कोको में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है परन्तु इसका केवल २१-३२ प्रतिशत भाग ही प्रोटीन के रूप में होता है।

इसके अलावा कोको में उपस्थित मुख्य पदार्थ कैफीन से बहुत कुछ मिलता जुलता ही थियोब्रोमीन होता है। कोको में टैनिन की भी मात्रा कुछ होती है। लगभग ४ प्रतिशत मात्रा खनिज पदार्थों की होती है।

चॉकलेट—कोको में शक्कर आदि पदार्थ एवं सुगन्धि मिला कर बनाई जाती है।

चाय और कॉफी आदि का पाचन-शक्ति पर प्रभाव—हमारी पाचन-शक्ति पर इन उत्तेजक पदार्थों का प्रभाव सदैव हानिकर ही होता है। 'लाला' और 'जठर-रस' दोनों की पाचन क्रियाओं में व्याघात होता है। सर विलियमरॉबर्ट्स का कथन

है कि चाय एवं कॉफ़ी में टैनिन की उपस्थिति ही पाचनशक्ति पर इन हानिकर प्रभावों के लिये उत्तरदायी है। यदि चाय बनाते समय उसमें बहुत थोड़ा सा सोडा डाल दिया जाय तो चाय का यह हानिकर प्रभाव नष्ट हो जाता है।

फ्रेज़र का कथन है कि चाय कॉफ़ी की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है और इसीलिये चाय से मन्दाग्नि-पीड़ित व्यक्तियों को बहुत हानि पहुँचती है। उनके अनुसार यह हानिकर प्रभाव टैनिन, एवं चाय आदि में उपस्थित कुछ विशेष प्रकार के सुगन्धिमय तैलों के कारण होते हैं। भारतवर्ष की चाय चीन की चाय की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती है। चाय से पेट में कॉफ़ी की अपेक्षा अधिक वायु उत्पन्न होती है। इसलिये पेट में वायु उत्पन्न होने वाले केसों में चाय की अपेक्षा कॉफ़ी को स्थान देना चाहिये।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि चाय अथवा कॉफ़ी के साथ दूध मिलाने से उपर्युक्त हानिकर प्रभाव कम हो जाते हैं।

इन पाचकरसों में रासायनिक क्रियाओं को क्षीण करने के अलावा चाय क उपस्थित टैनिन एक कॉफ़ी में उपस्थित 'कैफियौल' नामक पदार्थों के कारण आमाशय में एक प्रकार का दाह उत्पन्न हो जाता है जो कि मन्दाग्नि एवं क्षुधा-हीनता का कारण होता है।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि हमारे पाचन-संस्थान पर इन उत्तेजक पेय पदार्थों का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। हो सकता है कि स्वस्थ व्यक्तियों में यह हानिकर प्रभाव इतने कम होते हैं कि उनका कोई विशेष परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होने पाता। परन्तु जिन लोगों की पाचन-शक्ति प्रारम्भ से ही क्षीण है और वे मन्दाग्नि एवं भूख की कमी के शिकार हैं...उन्हें तो किसी भी तरह हो सके इन पदार्थों से सदैव दूर ही रहना चाहिये। यदि

किसी भाँति भी काम न चले और वे कुछ न कुछ पीना ही चाहें तो उन्हें चाय के स्थान पर कॉफ़ी और कॉफ़ी के स्थान पर कोको का व्यवहार करना चाहिये। यदि चाय ही पी जाय तो अच्छी चाय ही प्रयोग करनी चाहिये। उसे ३ ५ मिनट से अधिक नहीं सीजने देना चाहिये और जितना अधिक सम्भव हो सके उतना दूध मिला कर उसे अधिक से अधिक निरापद बना लेना चाहिये।

भोजन के समय और उसके साथ तो चाय का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। खाली पेट भी चाय बहुत हानिकर होती है और अधिक दाह उत्पन्न करती है...इसलिये जहाँ तक हो सके सुबह खाली पेट चाय पीने की आदत (बेड टी) छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये। आमाशय पर चाय का सबसे कम हानिकर प्रभाव तब होता है जब कि न तो वह बिलकुल खाली ही हो और न पूरा भरा हुआ। इसलिये चाय पीने का सर्वोत्तम समय तीसरे पहर है।

चाय और कॉफ़ी के अन्य प्रभाव

चाय में उपस्थित टैनिक एसिड अथवा टैनिन के प्रभावों का वर्णन हम अभी कर ही चुके हैं। चाय और कॉफ़ी में उपस्थित दूसरा मुख्य पदार्थ कैफ़ीन है। इसका प्रभाव हमारे स्नायविक संस्थान पर होता है। मानसिक क्रियाओं में तीव्रता आ जाती है। मानसिक क्लान्ति एवं शारीरिक थकावट दूर हो जाती है। नींद नहीं आने पाती और मनुष्य अधिक समय तक जाग सकता है।

चाय के उपर्युक्त प्रभावों का ही ज्ञान सर्व प्रथम मनुष्य को हुआ था। चाय की उत्पत्ति के बारे में एशिया के कुछ देशों में निम्न किंवदन्ती प्रसिद्ध है:--

बहुत दिनों की बात है कि एक राजकुमार भगवान की तपस्या में लीन था और दिन रात जागकर ईश्वर की आराधना किया करता था। एक दिन संयोगवश रात्रि में नींद ने उसे बहुत परेशान किया। बार-बार उसकी पलकें भारी हो कर बन्द हो जाती थीं। ईश्वर की आराधना में इस भाँति विघ्न होते देखकर यकायक वह बहुत क्रुद्ध हो उठा और क्रोध के आवेग में उसने अपनी दोनों पलकें नोंच कर फेंक दी। और फिर उस स्थान को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चला गया।

कुछ वर्षों के उपरान्त जब वह भ्रमण करता हुआ उसी स्थान को लौटा तो उसने देखा कि जिस स्थान पर उसने अपनी नुची हुई पलकें फेंकी थी वहाँ पर दो झाड़ उग रहे थे। जब उसने उन पौधों की पत्तियों को (केवल उत्सुकतावश) खाया तो यह जान कर उसके आश्चर्य का पारावार न रहा कि उन पत्तियों के सेवन मात्र से ही नींद न मालूम कहाँ भाग गई। उसी दिन संसार को पहली बार चाय का उपयोग मालूम हुआ।

इसी प्रकार की एक किंवदन्ती कॉफी के विषय में भी प्रसिद्ध है।

बहुत समय हुआ अरब में एक गरीब फ़कीर रहा करता था। एक बार उसने अपनी बकरियों में शाम को घर आने पर एक अजीब सी मस्ती और नशे का सा असर देखा। कई दिन लगातार उसने यही बात देखी। इसका कारण जानने के लिये उत्सुक हो एक दिन उसने अपनी बकरियों का पीछा किया और दिन भर उन पर निगाह रक्खी। तब उसने देखा कि वे एक स्थान पर लगे एक नये प्रकार के पौधे की पत्तियों को बड़े चाव से खाती हैं— और उसके थोड़ी देर बाद ही उनमें यह मस्ती आ जाती है। तदुपरान्त उसने स्वयं उस पौदे से पत्ती तोड़ कर खाई। घर पहुँचते-पहुँचते उसकी यह दशा हो गई कि उसके सम्बन्धियों और

पड़ोसियों ने उस पर कहीं से शराब पी आने का दोषारोपण किया। परन्तु जब उसने उपर्युक्त घटना उन लोगों को सुनाई तो वे यह सोच कर बड़े प्रसन्न हो उठे कि अल्लाह ताला ने खुश हो कर अपने बन्दों के लिये शराब की जगह इस पौदे को दुनिया में भेजा है।

चाय और कॉफ़ी अधिक मानसिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के लिये बहुत सहायक है। इस भाँति यह पदार्थ मानसिक शक्तियों को तीव्र कर आलस्य को हटा कर थकान दूर करते हैं। विचारों के प्रभाव की गति भी बढ़ जाती है। मस्तिष्क और शरीर की क्लान्ति दूर होकर उत्साह बढ़ता है।

श्वास-प्रश्वास क्रिया तेज़ी से और भली भाँति होने लगती है। हृदय के स्पन्दन की गति और शक्ति दोनों ही बढ़ जाती हैं। इस भाँति शराब, अफ़ीम आदि के नशे से उत्पन्न हुई दशा में कैफ़ीन एक उत्तम औषधि है। इन दशाओं के रोगियों को यदि और कुछ न मिल सके तो तेज चाय अथवा कॉफी ही देनी चाहिये।

हृदय के स्पन्दन की गति और शक्ति इस प्रकार बढ़ जाने से गुर्दों में रक्त की अधिक मात्रा जाने लगती है और मूत्र का संचार बढ़ जाता है। इस भांति शरीर से हानिकर विषमय पदार्थों को बाहर निकालने में भी सहायता होती है।

इस भांति अपने इन गुणों एवं स्नायविक संस्थान, हृदय, श्वास प्रश्वास क्रिया एवं गुर्दों पर होने वाले प्रभावों के कारण बहुत से ज्वरों में कॉफ़ी और चाय लाभ के साथ प्रयोग की जा सकती हैं।

यह स्पष्ट है कि इन पदार्थों को भोजन अथवा आहार की श्रेणी में कदापि नहीं रक्खा जा सकता। क्योंकि इनसे न तो हमारे शरीर की वृद्धि और क्षतिपूर्ति ही होती है और न हमें

शक्ति ही मिलती है। हाँ जिस भाँति एक चालू मशीन के पुर्जों में तेल दिया जाता है जिससे कि उसकी गति तेज़ रहती है—उसी भाँति चाय और कॉफी भी हमें मानसिक उत्तेजना प्रदान करती हैं।

जहाँ तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है—कि हम कितनी चाय बिना किसी हानिकर प्रभाव के पी सकते हैं?—इसका उत्तर देना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। किसी मनुष्य की व्यक्तिगत विशेषताओं और आदतों पर भी बहुत कुछ निर्भर होता है। हम पहले कह चुके हैं कि चाय आदि के प्रयोग से नींद नहीं आती और लोग बहुधा नींद न आने देने के लिये इनका प्रयोग भी करते हैं। परन्तु मैंने स्वयं ऐसे व्यक्ति देखे हैं कि जो नींद आने के लिये ही चाय का प्रयोग करते है और वे तब तक सो नहीं सकते जब तक कि उससे पहले उन्हें एक प्याला गरम चाय न मिल जाय। बहुत से लोग चाय का इस्तेमाल बिना किसी हानिकर प्रभाव के करते हैं–परन्तु जरा सी कॉफी पीते ही उनकी हालत खराब हो जाती है। बिलकुल इसका उलटा भी देखा गया है। इसीलिये उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में कोई विशेष नियम नहीं लिखे जा सकते।

इन वस्तुओं के अत्यधिक व्यवहार से हमारे पाचन एवं स्नायविक संस्थानों पर हानिकर प्रभाव पड़ते हैं। पाचन संस्थान पर होने वाले प्रभावों का वर्णन हम कर चुके हैं। स्नायविक संस्थान पर हानिकर प्रभावों के कारण निम्न लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं:—

अत्यधिक चाय पीने वाले व्यक्ति को मानसिक उत्तेजना होती है। वह जरा जरा सी बात पर चिड़चिड़ाने लगता है। अचानक साधारण सी ध्वनि सुनकर भी चौंक उठता है। उसके शरीर के

विभिन्न अंगों में कम्पन होने लगता है। हृदय में धड़कन, अनिद्रा और सिर में चक्कर एवं दर्द आदि रोगी की दशा को और भी कष्टकर बना देते हैं। उस व्यक्ति की तबियत हमेशा गिरी हुई सी और निरुत्साहित रहती है।

स्नायविक संस्थान पर होने वाले उक्त हानिकर प्रभाव बालकों में और वृद्धावस्था में अधिक पाये जाते हैं।

अन्त में यह कहना आवश्यक है कि उक्त पेय पदार्थ जहाँ तक हो सके कम ही प्रयोग करने चाहिये, विशेषकर उन व्यक्तियों को जिनके स्नायविक एवं पाचन संस्थान स्वस्थ न हों।

कोको का रासायनिक विश्लेषण करने पर उसके उपादान के सम्बन्ध में जो परिणाम दिये गये हैं, उन्हें देखकर यह भ्रम हो सकता है कि कोको एक उत्तम खाद्य पदार्थ है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। कोको इतनी कम मात्रा में प्रयोग की जाती है कि उससे प्राप्त हुये भोजन के मूल अवयवों एवं शक्ति का परिमाण बहुत ही नगण्य होता है।

स्नायविक संस्थान पर कोको का भी कॉफ़ी से कुछ मिलता-जुलता ही असर होता है।

चाय और कॉफी के हानिप्रद प्रभावों के कारण कुछ लोग इन्हें बिलकुल ही व्यवहार नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति बहुधा 'ओवलटीन', 'बोर्नविटा' आदि का प्रयोग करते हैं। 'ओवलटीन' दूध अंडे, माल्ट और कोको आदि के सम्मिश्रण से प्रस्तुत किया जाता है। 'ओवलटीन' में लगभग १२.३ प्रतिशत वसा, ६० प्रतिशत कर्बोज और १३.६ प्रतिशत प्रोटीन होती है।

रोगियों को या ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें किसी कारण वश चाय आदि का निषेध हो, 'ओवलटीन' 'बोर्नविटा', आदि पदार्थों का प्रयोग कराया जा सकता है।

मद्यपान

मदिरा का प्रचार केवल आजकल ही नहीं परन्तु बहुत प्राचीन समय से है। पौराणिक काल में भी 'वारुणी' के नाम से यह एक बहुत प्रचलित पेय था। तब से अब तक लगभग प्रत्येक देश, समाज और काल में यह किसी न किसी रूप में व्यवहृत होता आया है। न मालूम कितने देश, सभ्यताओं और साम्राज्यों को नष्ट करने का उत्तरदायित्व इस पर रक्खा जा सकता है। मुगल साम्राज्य के पतन का सेहरा भी इसी के सिर है।

मुगलों के राज्य के पतन का कारण उनके कुछ बादशाहों की बढ़ती हुई शराबपरस्ती ही थी। इतिहास में उसकी एक झलक मिलती है :—

बहादुरशाह का पोता मुहम्मदशाह दिल्ली के तख्त पर राज्य करता था। यह वह समय था जब कि नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। वह पश्चिम के मार्ग से भारत के प्रान्तों को पददलित करता हुआ दिल्ली तक आ धमका। उसने दिल्ली पहुँच कर बादशाह को लिखा, 'दो करोड़ रुपये दो वरना दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दूंगा।'

जब यह दूत दरबार में पहुँचा तो बादशाह शराब पी रहे थे और शेरें तथा गज़लें गाई जा रही थीं। बादशाह स्वयं अपनी कवितायें सुना रहे थे और अमीर उमरा उन्हें 'कलामुल्मुलूक लुकुलकलाह' कहकर झुक झुक कर सलामें बजा रहे थे। दूत ने खत दिया तो बादशाह ने वज़ीर से कहा 'पढ़ो क्या है ?' वज़ीर ने पढ़ा और कहा, 'हुज़ूर ऐसे गुस्ताखी के अल्फ़ाज़ हैं कि जहाँ पनाह के सुनने क़ाबिल नहीं।' बादशाह ने कहा 'ताहम पढ़ो।'

खत सुन कर फिर कहा 'क्या यह मुमकिन है कि यह शख्स दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दे ?' खुशामदी दरबारियों ने कहा, 'हुज़ूर कतई नामुमकिन है।' तब बादशाह ने हुक्म दिया। यह खत शराब की सुराही में डुबा दिया जाय और इसके नाम पर एक एक दौर और चले।' जब दौर खत्म हुआ तो दूत ने कहा, 'हुज़ूर बन्दे को क्या इरशाद है ?' बादशाह ने आज्ञा दी –'५०० अशर्फ़ी और एक दुशाला इसे इनाम दिया जाय।'

दूत चला गया। नादिरशाह तूफ़ान की भाँति दिल्ली पर चढ़ आया। और फिर क्या हुआ। इसके कहने की आवश्यकता नहीं।

इस प्रकरण में हमारा अभिप्राय मदिरा का एक वैज्ञानिक अध्ययन करने का है विशेषतः भोजन की दृष्टि से। क्योंकि आज कल के सभ्य समाज में यह दैनिक भोजन का एक विशेष अंग बन गया है। इस देश में तो भोजन के समय पानी पीने की प्रथा है। पर अनेक सभ्य देशों में भोजन के साथ शराब पी जाती है; और उस समय पानी पीना लोग सभ्य शिष्टाचार के प्रतिकूल समझते हैं। यह प्रथा उच्च कही जाने वाली श्रेणी के कुछ घरानों में यहाँ भी प्रचलित होती जा रही है। दावतों और पार्टियों में लोग शिष्टाचार के नाते इसे ग्रहण करने लगे हैं। परन्तु यह और भी दुख का विषय है कि हमारे देश में इसका विशेष प्रचार

निम्न श्रेणी की गरीब जातियों में ही अधिक है। ये लोग महुआ आदि से देशी शराब बना कर अपनी तृप्ति करते हैं, और बिना इसके उनके उत्सव फीके ही समझे जाते हैं।

यहाँ हमारा अभिप्राय मदिरा को अच्छा या बुरा कहने से नहीं है। हम तो मदिरा पान के विषय में केवल कुछ वैज्ञानिक तथ्य ही पाठकों के सामने रक्खेंगे। पाप पुण्य, अच्छे बुरे का विचार तो धर्म और समाज में होता है। हम तो सत्य क्या है यह जानने की चेष्टा करते हैं।

इससे पहले कि इस पर भोजन की दृष्टि से विचार किया जाये, यह अधिक उत्तम होगा कि हम शरीर पर इसके द्वारा होने वाले अन्यान्य प्रभावों का संक्षिप्त वर्णन कर दें। मदिरा से होने वाले सब प्रभाव उसमें उपस्थित 'अल्कोहल' नामक पदार्थ के कारण होते हैं। 'अलकोहल' नाम से शायद पाठक परिचित न हों, किंतु शराब, ब्रांडी, बियर, वाइन, क्लेरेट, और ठर्रा (देशी शराब) आदि नामों से कदाचित् ही कोई ऐसा हो जो जानकारी न रखता हो। इन सब में 'अलकोहल' ही विशेष पदार्थ है और उन विशेष गुणों का कारण है, जिनके अर्थ इन पेय पदार्थों का उपयोग किया जाता है। नीचे कुछ प्रचलित विलायती शराबों में उपस्थित अल्कोहल की मात्रा दी जाती है: –

'ह्विस्की'-	४० प्रतिशत
'रम' 'जिन' आदि	५१–५६ प्रतिशत
'हॉक्स' 'बरगन्डी'	६–१३ प्रतिशत
'ब्रान्डी'	४०–५० प्रतिशत
'शेरी' 'पोर्ट'	१८–२२ प्रतिशत
'शैम्पेन'	१०–१३ प्रतिशत
'क्लेरेट'	८–१२ प्रतिशत

'बियर' २·५--३·५ प्रतिशत
'एल' 'पोर्टर' ३--७ प्रतिशत
'जिंजर-बियर' १--३ प्रतिशत

सबसे प्रथम तो हमें निश्चय करना है कि क्या मदिरा उत्तेजक द्रव्य है ? उत्तर केवल एक है—"नहीं !" इस पर पाठक स्वभावतः यह पूछ बैठेंगे कि तो फिर क्या कारण है कि लोग शराब पीकर बकने झकने लगते है—मार पीट कर बैठते हैं ? यह तो उत्तेजक प्रभाव है !

ठीक है—देखने में तो कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। कुछ काल पूर्व अधिकांश वैज्ञानिक भी इस बात में विश्वास करते थे। इस विषय पर 'बिंज' का सिद्धान्त निम्न है—'अल्लकोहल पहले केन्द्रीय स्नायविक संस्थान के कोषों को उत्तेजित करता है और फिर बाद में उन्हें शिथिल कर देता है।'

लेकिन आधुनिक प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मदिरा किसी भी दशा में उत्तेजक नहीं है। इस नये सिद्धान्त के अनुसार अल्कोहल स्नायविक कोषों को उत्तेजित नहीं करता, बल्कि शुरू से ही उन्हें शिथिल करने लगता है। आप जानते हैं, शरीर की सारी क्रियायें वृहत मस्तिष्क द्वारा होती हैं परन्तु वृहत मस्तिष्क पर मन नियंत्रण करता है। इसी प्रकार मध्य मस्तिष्क पर जहाँ निद्रा और ताप केन्द्र स्थित हैं, वृहत मस्तिष्क का और सुषुम्ना पर, मध्य मस्तिष्क का प्रभाव रहता है। जब किसी भाग के ऊपर से नियंत्रण उठ जाता है तब वह उत्तेजित प्रतीत होता है। मदिरा थोड़ी मात्रा में या आरम्भिक दशा में मन का शमन करती है और इसी से वृहत मस्तिष्क के कार्यकलाप स्वतंत्र रूप से होने लगते हैं। पर जब मात्रा बढ़ती है क्रमशः वृहत तथा मध्य मस्तिष्क एवं अन्त में सुषुम्ना का भी शमन होता है।

तब दूसरा प्रश्न उठता है कि अल्कोहल से उत्पन्न हुई स्नायविक कोषों की शिथिलता एवं इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुये क्रमबद्ध प्रभाव किस रूप में प्रकट होते हैं।

कोषों के शिथिल होने की क्रिया सर्वप्रथम उन केन्द्रों से प्रारम्भ होती है जिनका विकास बाद में हुआ है और अपनी उच्चतम सीमा तक पहुँच चुका है। परिणाम स्वरूप मनुष्य की विवेक शक्ति, मानसिक कार्य क्षमता, विचारों की गम्भीरता और मानसिक कार्यों की गति और मति सबों का ही ह्रास हो जाता है। बुद्धि और विवेक का शमन होने से लज्जा और झिझक दूर हो जाती है। व्यक्ति अपने कार्यों के औचित्य एवं अनौचित्य की अनुभूति नहीं कर सकता। एतदर्थ पीनेवाला बकने झकने लगता है। इस सिद्धान्त द्वारा क्षणिक उत्तेजना का कारण यह समझा जाता है कि ऐसे केन्द्र, जो विचारों में 'ब्रेक' लगाकर उन्हें नियंत्रित करने की शक्ति रखते हैं, पहले ही शिथिल पड़ जाते हैं, और तब जो भी विचार अथवा कार्य मन के उन केन्द्रों से उत्पन्न होते हैं, जो अभी तक शिथिल नहीं हुये हैं, वे सब बिना संयम के विकसित हो जाते हैं। इसी नियंत्रण की कमी के कारण मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है, और उसे किसी बात का डर नहीं रहता। विवेक नष्ट हो जाने के कारण उस व्यक्ति में से स्वाभाविक बड़प्पन का ध्यान जाता रहता है, और उसे इस बात का रत्ती भर भी विचार नहीं रह जाता कि उसके कार्य की लोग कितनी हँसी उड़ा रहे हैं। उसे स्वयं अपने विचारों में सूझ दिखाई देने लगती है, और वह हर एक विषय पर विश्वास के साथ बकने लगता है। यद्यपि अन्य सुननेवाले यह समझते हैं कि वह ऊटपटाँग बक रहा है, किंतु उस मनुष्य को स्वयं अपने ऊपर इतना विश्वास हो जाता है कि उस समय वह यही समझने

लगता है कि जो कुछ वह कह रहा है ठीक है। और बहुधा उसे सुननेवाले भी उसी दशा में (पिये हुये) होते हैं (क्योंकि शराब बहुधा साथ बैठकर पी जाती है) और उन्हें भी उस व्यक्ति के सब कार्य उचित और सर्वोत्तम ही नजर आते हैं।

भावों पर से नियंत्रण हट जाने के कारण पीनेवाला या तो बहुत बोलने लगता है अथवा चुप हो जाता है। यह उस पीने वाले के व्यक्तित्व पर निर्भर है। यदि वह मित्र मंडली में बैठकर पी रहा है तो बोलने लगेगा। और यदि एकान्त में मदिरा पान करता है तो गंभीर हो जायेगा।

इसके बाद जब बृहत मस्तिष्क का शमन होता है तो कार्य कुशलता लुप्त हो जाती है। चलने में पैर और बोलने में जीभ लड़खड़ाती है। आत्मनियंत्रण क्षीण हो जाता है। उसकी बात बिलकुल ही समझ में नहीं आती।

तत्पश्चात मध्य मस्तिष्क का शमन होता है और पीनेवाला निद्रामग्न हो जाता है—चेतनता लुप्त हो जाती है। शरीर की उष्णता और हृदय की गति कम हो जाती है—नाड़ी और श्वास तेजी से और अनियमित चलने लगती है।

सुषुम्ना के शमन का अर्थ है मृत्यु—क्योंकि सुषुम्ना में हृदय रक्तचाप और श्वास क्रिया के संचालन केन्द्र है तथा इन्हीं पर जीवन निर्भर है। अथवा यों कहिये कि अधिक मदिरा पान करने से मृत्यु हो जाती है।

यह तो हुआ हमारे स्नायविक संस्थान पर मदिरा का प्रभाव। अब हमें देखना है कि गले से नीचे उतरकर आमाशय में पहुँचने पर मदिरा का क्या होता है ? हमारे आमाशय और पाचन क्रिया पर मदिरा का क्या प्रभाव पड़ता है ? क्या मदिरा

पान से स्वास्थ्य में वृद्धि होती है ? यदि नहीं तो टॉनिक में मदिरा क्यों दी जाती है ?

पिये जाने के उपरान्त आहार पथ में से अल्कोहल का आत्मीकरण बहुत शीघ्रता से होता है। और यह आमाशय की श्लैष्मिक कला में से भी रक्त में विलीन हो सकती है जबकि अन्य कोई पदार्थ इस भांति आमाशय से सीधा रक्त में विलीन नहीं होता। मदिरा की साधारण मात्रा दिये जाने के बाद उसका लगभग १ चौथाई भाग आमाशय से और शेष ३ चौथाई छोटी आँत के ऊपरी भाग में से होकर रक्त में विलीन हो जाता है। मदिरा के इस भांति विलीन होने के लिये किसी भी प्रकार की पाचन क्रिया की आवश्यकता नहीं। पीने के पाँच मिनट बाद ही अल्कोहल रक्त में देखा जा सकता है; और लगभग दो घंटे बाद रक्त में इसकी अधिकतम मात्रा उपस्थित होती है।

आमाशय और आँतों में से इस भाँति विलीन होकर अल्कोहल के रक्त में मिलने की गति विभिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। जब मदिरा में केवल १०-१५ प्रतिशत अल्कोहल होता है तो इसका आत्मीकरण बहुत शीघ्रता से होता है। अल्कोहल की मात्रा इससे अधिक होने पर देर लगती है। पेट भरा हुआ होने पर भी इनके विलीन होने में अधिक समय लगता है। मदिरा में अल्कोहल की मात्रा बहुत अधिक होने पर आमाशय में दाह उत्पन्न हो जाता है और तब वह उसमें घंटों रुकी रह सकती है।

रक्त में इस भाँति विलीन हुये अल्कोहल के अधिकांश भाग का पूर्ण ओषजनीकरण हो जाता है जिसके फल स्वरूप जल और कार्बन डाइऑक्साइड एवं शक्ति उत्पन्न होती है। एक ग्राम अल्कोहल के पूर्ण ओषजनीकरण से लगभग ६ कैलोरी (उष्णता) शक्ति उत्पन्न होती है। परन्तु इस भाँति ओषदीकृत होनेवाला

मात्रा सदैव स्थिर होती है। एक निश्चित समय में उससे अधिक अल्कोहल का ओषजनीकरण हमारे शरीर में नहीं हो सकता। यह मात्रा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में विभिन्न होती है। एक औसत मनुष्य के शरीर में एक घंटे में लगभग १० ग्राम अल्कोहल का ओषजनीकरण होता है इससे अधिक नहीं।

रक्त में पहुँचे हुये अल्कोहल का कुछ अंश श्वास एवं मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है।

आमाशय और पाचन क्रिया पर मदिरा का प्रभाव

यह इस बात पर निर्भर है कि मदिरा खाली पेट पी गई है अथवा भोजनान्तर और साथ ही किस प्रकार की मदिरा पी गई है इसका भी विचार करना पड़ेगा—तीक्ष्ण या जल-मिश्रित। खाली पेट मदिरा पीने से शीघ्र ही रक्त में जा पहुँचती है। साथ ही आमाशय में दाह उत्पन्न करती है। जल-मिश्रित मदिरा (१० प्रतिशत) आमाशय की श्लैष्मिक कला को उत्तेजित कर क्षुधा और पाचक रस की वृद्धि करती है। भोजनान्तर जल-मिश्रित मदिरासे अधिक हानि नहीं होती परन्तु खाली पेट मदिरा पान करना तो अत्यन्त हानिकर है। आमाशय में दाह होने के कारण घाव हो जाते हैं। रक्त में संचारित होती हुई मदिरा मस्तिष्क को तो प्रभावित करती ही है। अन्य जिन अङ्गों पर हानिकर प्रभाव होता है वे हैं—यकृत और हृदय। यकृत पर तो यह विष की भांति असर करती है। अत्यधिक मदिरापान से जिसका यकृत नष्ट हो चुका है उसका कोई इलाज नहीं है।

यहाँ सम्भव है कुछ पाठक यह प्रश्न पूछ बैठें कि यदि उपयुक्त सत्य है तो 'टॉनिक' में अल्कोहल क्यों दी जाती है। इसके उत्तर में हम केवल इतना कहना ही पर्याप्त समझेंगे कि आवश्यकता के अनुसार उचित मात्रा में दिये जाने पर विष भी अमृत (औषधि)

हो सकता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि मात्रा का प्रश्न मुख्य है। टॉनिक में बहुत ही अल्प मात्रा में अल्कोहल होता है और उसका भी हानिकर प्रभाव नहीं होने पाता क्यों कि ये टॉनिक सदैव भोजनान्तर पिये जाते हैं। इस भांति प्रयुक्त यह मदिरा केवल क्षुधा और पाचन की वृद्धि करती है। परन्तु जब शौक के लिए या आदतवश मदिरा-पान किया जाता है तो वह किसी भी दशा में शरीर को लाभ नहीं पहुँचा सकता।

दैनिक मदिरा पान से पाचन क्रिया शिथिल हो जाती है--मलावरोध, क्षुधाहीनता, पेट में पीड़ा, मन्दाग्नि 'डिसपेप्सिया' तथा आमाशय में घाव हो जाते हैं। मस्तिष्क पर इसके प्रभाव से स्नायुव्याधियाँ हो जाती हैं। पाचन शक्ति के क्षीण होने से खाद्य पदार्थों के मूल अवयव, विशेषतः विटामिन जैसे आवश्यक पदार्थ रुग्ण आंतों से शरीर में प्रवेश नहीं कर पाते। अतः इनकी कमी से उत्पन्न हुए रोग हो जाते हैं, यकृत नष्ट हो जाता है, हृदय क्षीण हो जाता है। और इस भाँति क्षीण शरीर लेकर मदिरापान करने वाला द्रुत वेग से मृत्यु पथ पर अग्रसर होता है।

अब हम इस प्रकरण के मुख्य प्रश्न का विवेचन करेंगे। क्या हम अल्कोहल को खाद्यपदार्थ अथवा भोजन की श्रेणी में रख सकते हैं ?

'भोजन' शब्द से क्या तात्पर्य है इस शब्द की हम पहले प्रकरण में ही विस्तृत व्याख्या कर चुके हैं। उन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमें यह देखना है कि अल्कोहल को भोजन शब्द से अलंकृत करना कहाँ तक उचित है।

मदिरा भी खाद्यपदार्थ है किन्तु अपूर्ण। भोजन के गुणों में से दो मुख्य हैं--शक्ति का उत्पादन और शरीर का निर्माण। नित्य ही हमारे शरीर के कितने ही कोष नष्ट हो जाते हैं-इनकी

मरम्मत खाद्यपदार्थों द्वारा होती है। मदिरा केवल शक्ति उत्पन्न कर सकती है, शरीर के तन्तुओं का निर्माण नहीं कर सकती।

हम यह जानते है कि यदि हमारे शरीर को भोजन उपयुक्त परिमाण में न मिले तो शरीर में उपस्थित प्रोटीन ही ओषदीकृत होने लगती है और हमारे शरीर को आवश्यक शक्ति प्रदान करती है। परिणामतः मूत्र में निष्कासित होने वाली नोषजन की मात्रा बढ़ जाती है। अब यदि हमें फिर कहीं से वसा अथवा कर्बोज प्राप्त होने लगे तो हमारे शरीर की प्रोटीन की क्षीणता और ओषदीकरण रुक जायेगा और मूत्र में निष्कासित नोषजन की मात्रा फिर पहले के ही समान हो जायगी। यदि हम वसा और कर्बोज के स्थान पर अल्कोहल इस मात्रा में दे कि उससे उतनी ही उष्णता उत्पन्न हो सके तो भी हमारे शरीर की प्रोटीन क्षीण नहीं होगी। अब यदि हम वसा और कर्बोज को उपयुक्त परिमाण के साथ साथ अल्कोहल भी दें तो मूत्र में नोषजन का निष्कासन पहले से भी कम हो जायगा। यह सब अगले पृष्ठ पर दिये गये चित्र की सहायता से आसानी से स्पष्ट हो जाता है। यह चित्र न्यूमैन के प्रयोगों के आधार पर बनाया गया है। यह प्रयोग २५ दिन तक चला था। भोजन में प्रोटीन और कर्बोज की मात्रा निरन्तर स्थिर रक्खी गई थी। केवल वसा की मात्रा में हेर फेर किया गया था। और दसवें दिन से लेकर २५ वें दिन तक रोज १०० ग्राम अल्कोहल दी गई थी। उपर्युक्त वर्णन किये गये परिणाम चित्र से स्पष्ट हैं। चित्र से विदित है कि अल्कोहल प्रारम्भ करने के लगभग पाँच दिन बाद मूत्र में नोषजन का निष्कासन अपनी समान मात्रा पर आया। इतना समय शरीर के कोषों को अपने आपको अल्कोहल का उपयोग करने के उपयुक्त बनाने में लग जाता है।

इस भाँति अब यह स्पष्ट है कि अल्कोहल भी वसा और कर्बोज की भाँति हमारे शरीर को शक्ति प्रदान कर सकता
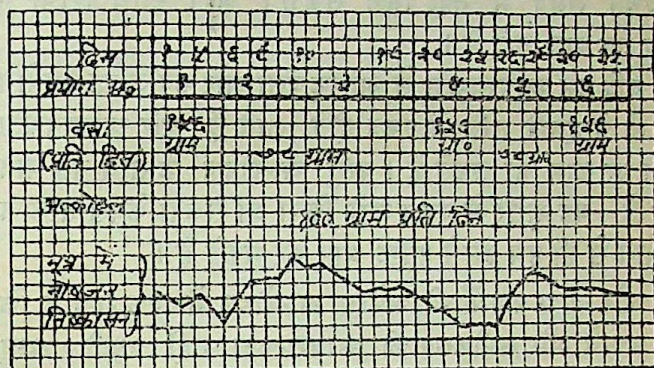
चित्र सं०—३७

है। १ ग्राम अल्कोहल के ओषजनीकरण से लगभग ६ केलोरी उष्णता (शक्ति) उत्पन्न होती है। परन्तु केवल इतने से ही अल्कोहल 'भोजन' कहाने का अधिकारी नहीं हो जाता।

भोजन की व्याख्या करते समय हमने कहा था कि भोजन शब्द की वैज्ञानिक परिभाषा के साथ-साथ इतना और आवश्यक है कि वह पदार्थ (भोजन) स्वयं अथवा शरीर में उत्पन्न हुये पदार्थ किसी भी प्रकार के हानिकर प्रभावों से सर्वथा रहित होने चाहियें। केवल तभी वह पदार्थ भोजन की श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए अब पाठक स्वयं निर्णय कर लें कि हम अल्कोहल को भोजन कह सकते हैं अथवा नहीं।

इतना ही नहीं, हम पहले ही कह चुके हैं कि हमारे शरीर में प्रति घंटे १० ग्राम से अधिक अल्कोहल का ओषदीकरण नहीं हो सकता। अर्थात् हम अल्कोहल से एक निश्चित मात्रा से

अधिक शक्ति एक निश्चित समय में नहीं प्राप्त कर सकते। परिणामतः हमें आवश्यकतानुसार अधिक शक्ति अल्कोहल से निश्चित समय में नहीं मिल सकती। अन्य खाद्य-पदार्थों के साथ यह बात नहीं है।

यदि हम आवश्यकता से अधिक वसा और कर्बोज का उपयोग करें तो ये हमारे शरीर में एकत्र होते जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर काम आ सकते हैं। परंतु अल्कोहल के साथ यह बात नहीं है--यह शरीर में एकत्र नहीं किया जा सकता केवल तत्काल उपयोग से ही हम इससे शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

और खाद्य पदार्थों की अपेक्षा अल्कोहल में एक गुण है कि इसे पचाने और समीकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। अस्तु रोगी के (जिसकी आँतें शक्तिहीन होगई हैं) शरीर की शक्ति बढ़ाने के लिये मदिरा का उपयोग हो सकता है--और होता था। पर जब आज मदिरा से अच्छे खाद्य हमारे पास हैं मदिरा का व्यवहार नहीं होता। अब हम रोगी को 'ग्ल्यूकोज़' देते हैं। यह मदिरा के दोषों से रहित और अधिक गुण सम्पन्न है।

अल्कोहल का भोजन की दृष्टि से कितना मूल्य है--अब हम यह निश्चय करना अपने पाठकों के ऊपर ही छोड़ते हैं। इस विषय से सम्बन्धित वैज्ञानिक तथ्य संक्षेप में हम दे चुके हैं।

इससे पहले कि हम यह प्रकरण समाप्त करें अधिक उत्तम होगा कि यहाँ पर कुछ अन्य आवश्यक प्रश्नों के उत्तर दे दिये जायें।

बहुत से लोगों का यह भ्रमात्मक विश्वास है कि जाड़े में जब सर्दी अधिक हो और बाहर जाना अनिवार्य हो तो शरीर को उष्ण रखने के लिये थोड़ी सी मदिरा पी लेना बहुत सहायक होता है। क्या यह सच है ? नहीं ! यह एक भ्रम है। मदिरा पीने

से हमारे शरीर में से उष्णता का निष्कासन अधिक होने लगता है। और तब हमें झूठी गर्मी महसूस होती है, इसी से लोग समझते हैं कि ये सर्दी से बचा सकती है। किन्तु इसके पीने के बाद सर्दी लगने और न्यूमोनिया आदि होने का भय पहले से बहुत अधिक हो जाता है। जाड़े में शरीर की गर्मी शरीर में ही रहे इसका प्रयत्न होना चाहिये।

मदिरापान की आदत क्यों पड़ जाती है? अब इस प्रश्न का उत्तर सरल है—

यह तो आपको पहले ही बताया जा चुका है कि मदिरा सब से पहले मन का शमन करती है, और मन ही संसार में सब दुखों की जड़ है! मन का शमन कर देने के बाद इन सबों की अनुभूति नहीं होती। दुख, दर्द, चिंता सभी मन के अनुभव हैं और इन्हीं को भूलने के लिये लोग मदिरा पीने लगते हैं। परन्तु बहुधा लोग इसे मित्रमंडली में बैठकर शौक वश पीना प्रारम्भ करते हैं और यह सोचते हैं कि 'थोड़ी सी' पी लेने में क्या हर्ज है। कभी कभी मित्रों का आग्रह मान लेने से कौन सा मैं शराबी हो जाऊँगा? परन्तु यह सुखद अनुभव, इतना 'मधुर' होता है कि फिर नित्य ही इसकी चाह होती है और फिर इस 'थोड़े से' के भँवर में पड़कर 'एक' प्याले से दो, 'दो' से 'तीन' और 'तीन' से 'चार' इसी भाँति मात्रा बढ़ती जाती है क्योंकि आदत पड़ जाने पर थोड़ी मात्रा से कोई असर नहीं होता।

सम्भव है कुछ पाठकों को यह पूछने की आवश्यकता हो कि क्या मदिरा-पान की आदत छुड़ाई जा सकती है?

हाँ! मगर धीरे धीरे नहीं—एकदम! धीरे धीरे मात्रा कम करके मदिरापान की आदत छुड़ाने का प्रयत्न व्यर्थ होता है। एकदम से बन्द करने में एक खतरा है—वह है कि समय से मदिरा

न मिलने के कारण उत्पन्न हुई दशा जिसमें मृत्यु तक हो सकती है। यह उपाय अस्पताल या चतुर डॉक्टर के निरीक्षण में ही प्रयोग किया जा सकता है। कोई भी बुरे लक्षण प्रकट होने पर तुरन्त उचित उपचार करने से किसी प्रकार का भय नहीं रहता। यदि भविष्य में इस व्यक्ति को उन कारणों से जिनसे उसे मदिरा पान की आदत लगी थी बचाया जाय तो समझ लीजिये कि वह इस बुरी लत से मुक्ति पा गया।

धर्म, समाज, और आदर्श की बात तो अलग, अब पाठक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि मदिरा पान करना कहाँ तक उचित है ?

तम्बाकू और पान

यद्यपि इन पदार्थों का भोजन से कोई सम्बन्ध नहीं है ताहम् हममें से अधिकांश के दैनिक जीवन में उक्त पदार्थ किसी न किसी रूप में इतना अधिक स्थान पा गये हैं कि यहाँ इनका एक संक्षिप्त विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

तम्बाकू का प्रयोग संसार की सभ्य और असभ्य सभी जातियों में किसी न किसी रूप में होता है। पाश्चात्य देशों मे तो बिरले ही ऐसे मिलेंगे जो इस लत से बरी हों। इन देशों की स्त्रियों में भी यह प्रथा अब अधिक प्रचार पा रही है। ग्रेट ब्रिटेन में लगभग ३½ पाउंड तम्बाकू प्रति वर्ष प्रति मनुष्य के हिसाब से प्रयोग होती है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किन वर्गों में इसका प्रचार अधिक है। आजकल तो ग़रीब और अमीर, शिक्षित और अशिक्षित, सभ्य और असभ्य, सभी समान रूप से इस लत के शिकार हो रहे हैं। सात आठ वर्ष के बालक को बीड़ी या सिगरेट पीते देख कर बहुत दुःख होता है। परन्तु जब हमारे देश का शिक्षित समाज ही इस ओर से बिलकुल उदासीन है तो इन असभ्य और अशिक्षित कहे जाने-वाले लोगों से क्या आशा की जा सकती है।

तम्बाकू अनेक रूप में इस्तेमाल की जाती है। सिगार, सिगरेट,

चुरुट, बीड़ी, चिलम, पाइप, और हुक्के के रूप में इसका धूम्रपान किया जाता है। बहुत से लोग इसे चूसते और खाते भी हैं। कहीं-कहीं तम्बाकू की सुंघनी (नस) का भी प्रचार है।

तम्बाकू के प्रयोग से क्या मजा मिलता है और कैसे मिलता है--यह ठीक-ठीक समझ में नहीं आता। कुछ लोग कहते हैं कि धूम्रपान से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और मानसिक कार्य करने की शक्ति उत्पन्न होती है। परन्तु अधिकांश तम्बाकू पीने वाले इस कथन से सहमत नहीं हैं।

तम्बाकू पीने से कैसे और क्या आनन्द आता है ? नहीं मालूम। शायद स्वयं सिगरेट या हुक्का पीने की क्रिया और उसके धुँये को देखकर किसी अजीब भाव और आनन्द की अनुभूति होती हो। अँधेरे में सिगरेट पीने में उतना आनन्द नहीं आता क्योंकि तब धुँआ दिखाई नहीं देता है। और इसीलिये बहुधा अन्धे व्यक्तियों को भी धूम्रपान में कोई विशेष आनन्द नहीं आता।

तम्बाकू के धुंये में 'निकोटीन' और 'पायरीडीन' नामक पदार्थ उपस्थित होते हैं। तम्बाकू में उपस्थित मुख्य पदार्थ निकोटीन है। तम्बाकू के सेवन से उत्पन्न हुए प्रभाव शरीर में पहुँची हुई निको-टीन की मात्रा पर निर्भर करते हैं। यह मात्रा कई बातों पर निर्भर रहती है। गीली तम्बाकू के धुयें में सूखी तम्बाकू के धुयें की अपेक्षा अधिक निकोटीन होती है। इसीलिए सिगार, बीड़ी अथवा सिगरेट की लम्बाई पर भी यह मात्रा निर्भर करती है। जो लोग धुयें को मुँह के अन्दर खींच कर बाहर निकाल देते हैं, उनकी अपेक्षा धुयें को और अन्दर श्वास नलिका में खींच ले जाने वालों के शरीर में निकोटीन की मात्रा अधिक पहुँचती है। निकोटीन के अलावा तम्बाकू में और अन्य विष पदार्थ होते हैं। जो धीरे धीरे शरीर में एकत्र होकर हानिकर प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

निकोटीन विष पदार्थ है। यह हमारे स्नायु मंडल को पहले उत्तेजित करता है और फिर शीघ्र ही उसे अत्यन्त शिथिल कर देता है। यह पदार्थ अपने शुद्ध रूप में तत्काल प्रभाव दिखाने वाला तथा सांघातिक होता है। यदि एक बूंद निकोटीन एक खरगोश पर जिसके शरीर के रोयें साफ कर दिए गए हों, डाल दिया जाय तो उसकी तत्काल मृत्यु हो जायेगी। कुछ सिगरेटों के तम्बाकू से यदि निकोटीन निकाल लिया जाये और यदि उसे किसी वयस्क व्यक्ति की जीभ पर रख दिया जाये तो १५ सेकेण्ड में ही उसकी मृत्यु हो जायेगी। सौभाग्य से निकोटीन का अधिकांश भाग धुयें में निकल जाता है और इसलिए वह विष तत्काल अपना असर नहीं दिखाता।

निकोटीन उपवृक्क नामक ग्रन्थि को उत्तेजित करता है जिसके कारण रक्त में इस ग्रन्थि से उत्पन्न होने वाला पदार्थ अधिक मात्रा में पहुँचता है और परिणामतः रक्त में शर्करा की वृद्धि हो जाती है। निकोटीन के प्रभाव से शरीर रक्त की शर्करा को अपेक्षाकृत शीघ्रता से जला देता है। हृदय की गति, श्वास क्रिया और रक्त चाप असाधारण रूप से बढ़ जाते हैं। शरीर के स्नायुजाल शिथिल और क्लान्त हो जाते हैं। उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वह नई शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करने के लिये और अधिक सिगरेट पीने लगता है। इस बीच उसे भोजन में कोई स्वाद नहीं मिलता और वह गले में रूखापन महसूस करने लग जाता है।

लेकिन यह सब तो निकोटीन के साधारण दुर्गुण हैं। उसका सबसे प्रबल प्रभाव तो हृदय और रक्तप्रणालियों पर पड़ता है जिसके फल स्वरूप असाधारण रोग उत्पन्न हो सकते हैं। निकोटीन के कारण आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की

अधिकता हो जाती है। फलस्वरूप छाती में जलन, कब्ज़ियत, पेट में दर्द आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। खाली पेट बराबर सिगरेट पीने के परिणाम स्वरूप आमाशय में घाव उत्पन्न हो सकते हैं।

तम्बाकू के अधिक प्रयोग से क़ै और दस्त होने लगते हैं। चक्कर, सिर में दर्द और जी मितली के लक्षण शीघ्र ही प्रकट होते हैं। शरीर से पसीना छूटने लगता है। तम्बाकू के इस प्रभाव को अनुलोमन कहते हैं।

सिगरेट के धुंये का तापमान उसके नीचे के सिरे पर १४० डिगरी (F) रहता है। निकोटीन की अपेक्षा उसमें अमोनिया, कारबोलिक एसिड और पाइरीडीन सरीखे पदार्थ भी उपस्थित रहते हैं। इस भांति धुंये में उपस्थित इन पदार्थों और उसके ऊँचे तापमान के कारण कण्ठ और श्वास नलिका की श्लैष्मिक कला में निरंतर दाह होता रहता है, परिणामतः उनमें जुखाम, खाँसी और अन्य श्वास रोगों की प्रतिरोधक शक्ति नहीं रह जाती।

अधिक धूम्रपान करने से हृदय के कार्यों में व्याघात होता है। उसकी स्पन्दन गति अनियमित हो जाती है। धड़कन होने लगती है।

आँखों पर भी ख़राब असर पड़ता है। नजर धुँधली और कमज़ोर होती जाती है और धीरे धीरे वह व्यक्ति बिलकुल अन्धा हो जाता है।

तम्बाकू के धुंये में बेंज़पाइरीन नामक एक पदार्थ होता है जो अधिक तम्बाकू पीनेवाले व्यक्तियों के ओंठ अथवा जीभ पर 'कैन्सर' उत्पन्न कर सकता है।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि तम्बाकू का उपयोग किसी भी दशा में उपयुक्त नहीं। इससे कितने भीषण परिणाम उत्पन्न हो सकते

हैं, इसका संक्षिप्त परिचय हम पा चुके हैं। इसलिये तम्बाकू का उपयोग भूलकर भी नहीं करना चाहिये। विशेषकर ऐसे व्यक्तियों को तो और भी सावधान रहना चाहिये जिनका स्वास्थ्य प्रारम्भ से ही क्षीण हो। हृदय, रक्तचाप, मन्दाग्नि, अतिसार एवं स्नायविक व्याधियों से पीड़ित व्यक्तियों को तो इससे कोसों दूर ही रहना चाहिये।

तम्बाकू के धुयें में 'कार्बन मोनो ऑक्साइड' नामक गैस भी उपस्थित होती हैं। यह हमारे शरीर में पहुँच कर रक्त में उपस्थित 'हीमोग्लोबिन' ❀ से संयुक्त हो जाती है। और इस भाँति हमारे शरीर में उपस्थित हीमोग्लोबिन का एक भाग हमारे लिये बिलकुल बेकार हो जाता है। परिणाम स्वरूप हमारे शरीर में ओषजन उपयुक्त परिमाण में नहीं पहुँच पाती अतएव शारीरिक तन्तुओं के कार्य में व्याघात होने लगता है। ऐसे व्यक्ति कोई भी परिश्रम का कार्य जैसे, दौड़ना, खेलना, आदि नहीं कर सकते। भारी वज़न उठाने में संसार का रेकार्ड तोड़ने वाले विश्व-प्रसिद्ध खिलाड़ी जेनी टुने ने पिछले कई वर्षों से अवकाश ले लिया है। लेकिन उसका दावा है कि अगर उसका प्रति द्वन्दी जे० लुई सिगरेट पीना प्रारम्भ कर दे और छै महीने तक रोजाना सिगरेट के दो एक डिब्बे खाली करता रहे तो वह उसे पछाड़ देगा। उसका विश्वास है कि तम्बाकू या सिगरेट पीने वाले व्यक्तियों के स्नायुजाल, मांस पेशियां आदि इतने शिथिल और निशक्त हो जाते हैं कि वे कोई असाधारण परिश्रम का कार्य कर ही नहीं सकते।

यह न समझना चाहिए कि निकोटीन के कुप्रभाव केवल

❀'हीमोग्लोबिन' क्या है ? इसके क्या कार्य हैं ? इसकी व्याख्या 'वायु' के प्रकरण में की जा चुकी है।

सिगरेट पीने वालों को ही भोगने पड़ते हैं। सच तो यह है कि किसी भी रूप में तम्बाकू का सेवन शारीरिक स्वास्थ्य और शक्ति के लिए महा अनिष्टकारी है। तम्बाकू का प्रभाव शरीर पर धीरे धीरे पड़ता है, इसलिए लोगों को तत्काल इसका असर मालूम नहीं होता। लेकिन अन्त में जब वह प्रकट होता है तो उससे बचने का कोई उपाय ही नहीं रह जाता।

पान

भारतवर्ष में पान खाने की प्रथा बहुत प्रचलित है। संयुक्त प्रान्त में तो बहुत थोड़े से ही परिवारों को छोड़कर शेष सबों के यहाँ पानदान अवश्य पाया जायगा। पान को चूना, कत्था, सुपारी, इलायची और लौंग आदि के साथ लगाकर खाते हैं। यह पाचन शक्ति और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। प्यास और मुँह का सूखना दूर करता है। मुँह से दुर्गन्धि दूर करता है और मुँह के बुरे स्वाद को हटाता है।

भोजन के बाद एकाध पान खाने से कोई हानि नहीं होती। बल्कि कुछ लाभ ही हो सकता है। भोजन की पाचन क्रिया में सहायता होती है। भोजन के बाद पान खाने से मुँह और दाँत साफ हो जाते हैं।

अधिक पान खाना निश्चय ही हानिकर है। खाली पेट कभी पान नहीं खाना चाहिये। सोते समय भी पान का उपयोग अच्छा नहीं। बहुधा लोग पान को मुँह के अन्दर दबा कर रखते हैं—और इस तरह रात-रात भर पान उनके मुँह में रहता है। इससे दाँतों और मसूड़ों को हानि होती है।

यदि रात में पान खाया हो तो सोने से पहले मुँह को पानी से खूब अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये। अधिक पान खाने से अरुचि और मन्दाग्नि के रोग हो जाते हैं।

भारतीय भोजन
के
कुछ दोष

पिछले प्रकरणों में भोजन, उसकी आवश्यकता, पाचन-क्रिया, विभिन्न खाद्य-पदार्थों और भोजन के मूल अवयवों आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला जा चुका है। इस पृष्ठ भूमि की सहायता से साधारण भारतीय भोजन के मुख्य दोषों को समझना कठिन नहीं।

भारत के साधारण नागरिक का प्रधान आहार गेंहू, बाजरा, ज्वार आदि में से कोई अन्न तथा चावल हैं। दूध, शाक-भाजी, वसा, फल आदि धनी मानी पुरुषों के चोंचले समझे जाते हैं। इस भाँति साधारण भारतीय के भोजन के प्रधान दोष ये हैं—

(१) **प्रोटीन का अभाव**—हमारे भोजन में प्रोटीन के परिमाण और गुण (श्रेणी) दोनों की ही हीनता पाई जाती है। शाकाहारी कहानेवालों के भोजन में तो इसका नितान्त अभाव रहता है।

(२) विटामिनों की कमी—अन्न को प्रधान आहार बनाने से हमारे भोजन में विटामिन 'ए', 'सी' और 'डी' की कमी रहती है। चावल का अधिक उपयोग करनेवालों में विटामिन 'बी' की भी कमी रहती है।

(३) खनिज पदार्थों की अल्प मात्रा—भोजन में ही शाक-भाजी के अभाव में खनिज-पदार्थों की बहुत कमी रहती है।

(४) वसा की कमी—हमारे भोजन में चर्बीयुक्त पदार्थों जैसे घी, मक्खन, दही आदि केवल नाम मात्र को होते हैं। इस लिए भोजन में वसा अम्लों तथा वसा में घुलनशील विटामिनों ('ए' और 'डी') का अभाव रहता है। साथ ही आवश्यक शक्ति प्राप्त करने के लिए कर्बोज पदार्थों पर निर्भर रहने से भोजन अधिक परिमाण में करने की आवश्यकता होती है।

(५) कर्बोज की अधिकता—हमारे भोजन में सस्ते कर्बोज पदार्थों की अधिकता रहती है। आवश्यक शक्ति प्राप्त करने के लिए वसा की जगह कर्बोज पदार्थों की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। जब भोजन में कर्बोज पदार्थों की अधिकता होती है—तो विटामिन 'बी,' की भी उसी अनुपात से अधिक जरूरत होती है। हमारे भोजन के कर्बोज पदार्थ (चावल आदि) विटामिन 'बी,' में पहले से ही निर्धन होते हैं। इस भाँति विटामिन 'बी,' हीनता के लक्षण और शीघ्र तथा सुगमता से प्रकट होते हैं—कंगाली में आटा गीला।

(६) भोजन बनाने के दूषित उपाय—हमारे हीन भोजन में जो कुछ थोड़ा बहुत सार होता भी है—वह हमारे भोजन बनाने के दोषयुक्त तरीकों की बलिवेदी पर चढ़ जाता है। साग को काटकर धोने, उबालकर पानी फेकने, खूब रगड़ रगड़

कर भूनने, चावल को मल-मल कर धोने, उबालकर मांड़ फेकना, आटे से चोकर निकालने आदि की ओर हम संकेत कर चुके हैं।

इस तरह का भोजन पाकर कैसे स्वतंत्र भारत में बलवान, बुद्धिमान, सुन्दर, कर्मशील नागरिक बन सकते हैं। यदि तीस करोड़ में यदा कदा एक तिलक, लाजपत, गांधी, टैगोर और रमन निकल आये तो क्या है। हमारा आदर्श तो घर घर गांधी, टैगोर और रमन पैदा करने का है। इसके पहले यह आवश्यक है कि हमारा स्वास्थ्य ठीक हो। इसके लिये सबसे पहली और आवश्यक बात है कि हमारा भोजन उत्तम हो।

उपर्युक्त दोषों के निवारण के लिये उपाय करने होंगे।

(१) भोजन में दूध, दही, मठा, अंडे तथा गोश्त की उपयुक्त मात्रा में उपस्थिति। इनमें हमें उत्तम श्रेणी की प्रोटीन मिल सकेगी। दूध में उपस्थित विटमिन 'ए' और 'डी' भी मिल जायेंगे।

(२) हरी शाक भाजी तथा ताजे फलों की प्रचुरता—इनसे विटामिन तथा खनिज पदार्थों की कमी नहीं होने पायेगी।

(३) भोजन में घी, मक्खन तेल आदि वसामय पदार्थों की अधिक मात्रा।

(४) इन सुधारों से कर्बोज पदार्थों की मात्रा स्वयं कम हो जायेगी।

(५ भोजन बनाने, रखने तथा खाने के उपायों में आवश्यक सुधार।

(६) बाजार में बिकने वाले डिब्बों में बन्द, रक्खे हुये भोजनों के विरोध में संगठित प्रचार।

सरकार का कर्तव्य—इन उपायों को सम्भव करने के लिये हमारी सरकार को कदम उठाना पड़ेगा। भोजन सम्बन्धी बातों का आवश्यक प्रचार; साग भाजी आदि की अच्छी खेती को सामूहिक ढंग पर व्यवस्था, गोशालाओं की आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर स्थापना तथा भोजन सम्बन्धी आवश्यक वैधानिक नियम—ये सब बाते हैं—जिनके लिये हम अपनी कहलाने वाली सरकार से आशा कर सकते हैं।

भोजन बनाना

मानव जाति के इतिहास में जो मुख्य आविष्कार हुये हैं—उनमें से भोजन बनाने की कला भी एक है। इस कला के सबसे प्रारम्भिक आविष्कारक भी उतनी ही प्रसंशा और सम्मान के पात्र हैं—जितने कि आधुनिक विज्ञान के चमत्कारिक आविष्कारों के जन्मदाता। अपने जन्म के प्रारम्भिक रूप से आज तक मानव सभ्यता के विकास के साथ साथ इसकी भी उत्तरोत्तर उन्नति हुई; और आज यह अपने पूर्ण विकसित रूप में स्वयं एक पूर्ण विज्ञान बन गई है

भोजन के रखने से लेकर भोजन बनाने तक की विभिन्न क्रियाओं से हमारे स्वास्थ्य का कितना निकट सम्बन्ध है यह हम इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर बताते आये हैं। आटे और चोकर; चावल धोने और पकाने के उपाय; शाक भाजियों क उपयोग के विभिन्न तरीके सभी पर हम विस्तृत प्रकाश डाल चुके हैं। इस प्रकरण में हम भोजन पकाने की आवश्यकता; उसके विविध उपाय तथा उनके द्वारा सम्भावित हानि और उनके रोकने के तरीकों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

भोजन पकाने की आवश्यकता

(१) भोजन को अधिक आकर्षक और सुन्दर बनाने के लिये।

(२) भोजन को सुपच बनाने के लिये।

(३) विभिन्न रोगों के कीटाणु तथा कृमियों के अंडे आदि जो कुछ खाद्य पदार्थों में पाये जा सकते हैं--को नाशकर भोजन को निरापद बनाने के लिये।

(४) भोजन को कुछ अधिक समय तक उपयोग करने लायक रखने के लिये।

हमारा भोजन जितना ही अधिक सुन्दर, स्वादिष्ट और आकर्षक होगा—वह उतनी ही रुचि के साथ खाया जायेगा और उतनी ही सुगमता से पच भी सकेगा। साथ ही भोजन का निरापद होना भी आवश्यक है। बहुधा हरी शाक भाजियों में आंत्रिक ज्वर तथा विशूचिका जैसे भीषण रोगों के कीटाणु उपस्थित रह सकते हैं। इन सभी दृष्टियों से भोजन पकाने का महत्वपूर्ण स्थान है।

पकाने की क्रिया से परिवर्तन

गोश्त—गोश्त को पकाने से उसमें उपस्थित कोलेजन नामक कठोर पदार्थ जल में घुलनशील जिलेटीन में परिवर्तित हो जाता है। इससे माँस मुलायम हो जाता है, सुगमता से चबाया जा सकता है—और परिणामतः पाचक रसों के अधिक निकट और पूर्ण सम्पर्क में आ सकता है। जल में पकाने से यह परिवर्तन सीधी आँच देने (भूनने) की अपेक्षा शीघ्र होता है।

कोलेजन के उक्त परिवर्तन के साथ साथ मांस-पेशियों के तन्तु पर भी प्रभाव होता है। पकाने से यह कठोर हो जाती है। इस भाँति पकाने का अन्तिम परिणाम उस गोश्त में उपस्थित कोलेजन की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि कोलेजन की अधिकता हुई तो पकाने पर वह मांस मृदुल हो जायेगा और नहीं तो कठोर।

अंडा—अंडे के बारे में बहुधा हम लोगों की धारणा है कि बिलकुल कच्चा अंडा सबसे अधिक सुगमता से पचता है। परंतु बात ऐसी नहीं है। हल्का पका हुआ अंडा कच्चे अंडे की अपेक्षा शीघ्र और सुगमता से पच सकता है।

वनस्पति वर्ग

साग-भाजी कन्दमूल तथा अनाज आदि में उपस्थित कर्बोज मुख्यता स्टार्च (श्वेतसार) के रूप में रहता है। श्वेतसार के कण कोषों के अन्दर निहित रहते हैं। इन कोषों की दीवारें काष्ठौज की बनी होती हैं। काष्ठौज स्वयं दुष्पाच्य पदार्थ है। पकाने से काष्ठौज की दीवारें टूट जाती हैं। तथा श्वेतसार के कण फूलकर बाहर निकल आते हैं। अब इन पर पाचक रसों का प्रभाव भी आसानी से और अपेक्षाकृत अधिक होता है।

साथ ही पकाने पर श्वेतसार की कुछ मात्रा कर्बोज के और सरल यौगिकों (डेक्सट्रिन) में परिवर्तित हो जाती है। ये सुगमता से पच जाते हैं और जल में घुलनशील भी होते हैं।

दूध

दूध को उबालने से उसमें उपस्थित प्रोटीन लेक्टेलब्यूमिन थक्के के रूप में जम जाती है। इसके साथ में कैलशियम के यौगिक तथा दूध में उपस्थित वसा मिलकर मलाई बन जाती है। इस मलाई में दूध की पोषण शक्ति का १०-१५ प्रतिशत भाग रहता है। लेक्टएलब्यूमिन में उपस्थित 'एमिनो एसिड' हमारे लिये बहुत आवश्यक है।

बहुधा छोटे बच्चों को मलाई से चिढ़ हो जाती है। और फिर बड़ी उमर तक यह आदत पड़ी रहती है। बहुत से तो दूध को छान कर मलाई निकाल देते हैं—और तब पीते हैं। यह अच्छी

बात नहीं है। बच्चों में ऐसी आदत जहाँ तक हो सके नहीं पड़ने देना चाहिये। और यदि मलाई से चिढ़ ही हो तो दूध को इस तरह गरम करना चाहिये ताकि मलाई बनने ही न पाये। ऐसा करने के लिये दूध को केवल ७० सेंटीग्रेड तक ही गरम करना चाहिये। इसके आगे नहीं। इस ताप तक गरम करने से कीटाणुओं का नाश हो जायेगा।

विटामिन 'सी'—पकने से-भोजन में उपस्थित विटामिन 'सी' की मात्रा कम हो जाती है। इसके प्रधान कारण निम्न हैं:—

(१) प्रायः सभी शाक भाजियों, (जिनमें विटामिन 'सी' होता है) में एक पदार्थ होता है जिसका नाम 'एसकॉर्बिक एसिड ऑक्सिडेज़' है। इसका विटामिन 'सी' पर विनाशकारी प्रभाव होता है। इस लिये शाकभाजियों को रखने पर उनमें विटामिन 'सी' की मात्रा कम हो जाती है। शाकभाजियों को काटने; तराशने, कद्दूकश करने आदि पर ये पदार्थ विटामिन 'सी' के और अधिक सम्पर्क में आता है। भोजन पकाने पर तापमान की वृद्धि से इसका विटामिन 'सी' नाशक प्रभाव और उग्र हो जाता है। इस भाँति विटामिन 'सी' को नाश होने से बचाने का एक उपाय है—

शाक भाजी को जितने पानी में पकाना हो उसे आग पर चढ़ाकर उबल जाने दिया जाये। जब पानी उबलने लगे—तब उसमें साग छोड़ा जाये। ऐसा करने से 'एसकॉर्बिक एसिड ऑक्सिडेज़' पहले स्वयं नष्ट हो जायेगा।

(२) विटामिन 'सी' की मात्रा कम हो जाने की दूसरी संभावना-पकाने में प्रयोग किये गये जल के साथ निकल जाने की है।

इसे रोकने के लिये दो उपाय हो सकते हैं। या तो इतना थोड़ा पानी इस्तेमाल किया जाय कि पानी बचने ही न पाये और यदि पकाने के बाद जो जल बचे उसका प्रयोग भी किया जाये।

बन्द गोभी को जब पानी में डाल कर उबाला जाता है तो शीघ्र ही इस पानी में विटामिन 'सी' की मात्रा बन्दगोभी के पकते हुये पत्तों में उपस्थित विटामिन 'सी' के समतुलित हो जाती है। यदि गोभी का पाँच गुना पानी डाला गया है तो लगभग २०-३० मिनट के उपरान्त विटामिन 'सी' का पाँच भाग जल में और केवल एक भाग गोभी के पत्तों में रह जाता है। विटामिन 'सी' का अधिक नाश हुये बिना ही बन्दगोभी या अन्य शाक-भाजियों के पकाने का एक उत्तम उपाय निम्न है—

बन्दगोभी या दूसरे शाक को साफ़ करके धो लेने के उपरान्त मोटा-मोटा काट लो। आधा सेर से सेर भर तक साग के लिये एक प्याला जल काफी होगा। जब पानी उबलने लगे तो उसी बर्तन में इस कटे हुये साग को डाल कर ऊपर से किसी चीज़ से ढक दो और फिर उसके ऊपर कोई वज़नदार चीज़ रख दो, जिससे सारी की सारी भाप अन्दर ही रहे—बाहर न निकल सके। १०-१५ मिनट के अन्दर स्वादिष्ट सब्ज़ी पककर तैयार हो जायेगी। जल का जरा सा भी अंश नहीं बचेगा। साग भाप की गर्मी से पक जायगा। उसके रंग, सुगन्ध और स्वाद में कम से कम परि-वर्तन होगा। विटामिन 'सी' का कम से कम अंश नाश होगा।

आलू को बिना छिले उबालने से विटामिन 'सी' की कम हानि होगी।

(३) भोजन में विटामिन सी की कमी हो जाने का तीसरा

कारण उसको पक जाने के बाद खाने के समय तक चूल्हे पर चढ़ाये रखकर गरम रखने का रिवाज है। जब साग-भाजी पकती होती है वह चारों ओर से जल से घिरी रहती है और वायु का अधिक सम्पर्क नहीं होने पाता। पक जाने के बाद जब वायु का सम्पर्क होता है और साग गरम रक्खा जाता है, तो विटामिन 'सी' का ओषजनीकरण होने लगता है। इसकी गति काफ़ी तेज़ होती है। प्रति घंटे विटामिन 'सी' की लगभग ५० प्रतिशत मात्रा का नाश हो जाता है।

सोडा डालकर भोजन बनाना—सोडे की उपस्थिति शाक-भाजी पकते समय तो विटामिन 'सी' की मात्रा कम करने के लिय उत्तरदायी नहीं है। परन्तु बाद में उसे गरम रखने पर सोडे की उपस्थिति के कारण ओषजनीकरण क्रिया द्रुत गति से होती हैं और अब अधिक विटामिन सी का नाश होता है।

सोडे से विटामिन 'बी,' तथा राइबोफ्लेविन का नाश होता है। इसलिये अधिक उत्तम हो यदि सोडे का प्रयोग न किया जाय।

अन्य विटामिनों पर प्रभाव

विटामिन 'ए'—किसी वस्तु को लगातार देर तक पकाने से उसकी विटामिन 'ए' की मात्रा कम हो जाती है। ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में विटामिन 'ए' का नाश नहीं होता। ठंड का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता। इसलिये अच्छे दूध से बनी 'आइस-क्रीम' में विटामिन 'ए' मौजूद रहता है।

विटामिन 'डी'—अन्य विटामिनों की अपेक्षा यह अधिक स्थायी विटामिन है।

ग्रीवा—neck
वक्ष—thorax
उदर—abdomen
कशेरुकायें—vertebrae
टेटुवा—trachea
वक्ष-उदर मध्यस्थ पेशी—diaphragm
आमाशय—stomach
हृदय द्वार-cardiac orrifice
दक्षिण भाग—pyloric part
अन्त्र—intestine
पक्वाशयिक द्वार—pyloric orrifice
विसार—relaxation
नल्याकार—tubular
आमाशयिक रस—gastric juice
क्षुद्रान्त्र—small intestine
वृहत अंत्र-large intestine
क्लोम रस—pancreatic juice
पित्त—bile
ग्राहकांकुर—villi
पायर ग्रन्थि समूह—pyers patches
मंथर ज्वर—typhoid fever
उद्गामी—ascending
अनुप्रस्थ—transverse
अधोगामी—descending
कपाट—valve
उपान्त्र—appendix
प्रदाह—inflammation
गुदा—anus
मलाशय—rectum

भोजन की पाचन क्रिया

पाचन क्रिया—digestion
विशिष्ठ—specific
जान्तव—organic
अणुवीक्ष्य—microscopic
यकृत, जिगर—liver
क्लोम—pancreas
क्लोमरस—pancreatic
केसीन—casein
गन्ने की शक्कर—sucrose
ग्ल्यूकोज—glucose
माल्टोज— maltose
आन्तरिक रक्तोत्पादक अंश—intrinsic factor
बाह्य रक्तोत्पादक अंश—

juice

पित्त—bile

श्वेतसारीय--starchy

टायलिन एनज़ाइम--ptyalin enzyme

श्वेतसार—starch

शर्करा--sugar

अघुलनशील —unsoluble

लीन—absorbe

अम्लाशय—acidity

पेप्सीन—pepsin

रेनेट—renet

लवण—salts

जान्तव अम्ल-organic acids

रेनिन—renin

केसीनोजन—caseinogen

ग्लिसरीन--glycerine

वसा अम्ल—fatty acids

क्षुद्रान्त्रीय पाचक रस-succus entericus

extrinsic factor

रक्तप्रतिपालक पदार्थ—haemopoitic principal

वसा बिन्दुक--fat droplets

परिमाणात्मक--quantitative

विश्लेषण—analysis

ट्रिप्सिन—trypsin

माध्यम—medium

ट्रिप्सिनोत्पादक पदार्थ-trypsinogen

एमाइलेस—amylase

श्वेतसार कण--starch granules

लाइपेस—lipase

वसा विश्लेषक—lipolytic

इरेप्सिन—erepsin

पित्ताशय—gall bladder

आंतों में सड़ान—putrefaction

भोजन का आत्मीकरण

ग्राहकांकुर-intestinal villi

द्राक्षौज--glucose

फ्रक्टोज़—fructose

ग्लाइकोजन—glycogen

मैटाप्रोटीन—meta-protein

प्रोटीओज़—proteose

पेप्टोन—peptone

पौलीपेप्टाइड—polypeptide

मधुमेह—glycosuria
अन्तःस्रावी पदार्थ—internal secretion
इनसुलिन—insulin
बहुमूत्र—polyuria
बहुबुभुक्षा—polyphagia
बहुपिपासा—polydypsia
एमिनो एसिड—amino acid
दूधिया घोल—emulsion
लसीका केशिकायें—lymph capillaries
लसीका—lymph
मस्तिष्क—brain
सुषुम्ना—spinal cord

दुग्ध, अंडे एवं माँस

हॉपकिन्स—hopkins
गाढ़ा दूध—condensed milk
पनीर—cheese
स्नेहन—fatty
हाई ब्लड प्रेशर-high blood pressure

अन्न वर्ग

अनाज—cereals
दाल—pulses
अँकुआ—germ
फ्लेक्स—flakes
काष्ठौज—cellulose
खमीर—yeast
स्पंज—sponge
बेकिंग पाउडर—baking powder
गल्यूटेन—gluten
पलाग्रा—pellagra
जई—oats
चूषण—absorption
अरवा चावल—raw rice
उसना चावल-parboiled rice

कन्द-मूल, फल और मेवे

पीरू—peru
बोलिविया—Bolivia
उष्ण कटिबन्ध—tropical zone

साइट्रिक, टारटरिक, मैलिक अम्ल—cytric tartaric malic acid
विरेचक—laxative
मलावरोध—constipation
अमेरिका—America
कनाडा—canada
जीर्ण—chronic
अतिसार—diarrhoea
प्रचुरता—abundance

शाक-भाजी और उनका उपयोग

हीमोग्लोबिन—haemoglobin
क्लोरोफ़िल—chlorophil
आन्त्रिकज्वर, मियादी बुखार—enteric fever
विशूचिका, हैजा—cholera
रेशे—fibre; roughage
कुंये की दवा—potassium permanganate
पेचिश—dysentry
कृमि—worms

मिर्च मसाले

जलन—irritation
अपच—indigestion
अजीर्ण—dyspepsia
जीर्ण प्रदाह—chronic inflammation
आमाशयिक क्षत—gastric ulcer
आँतों का आँकुचन—peristaltic movements
उत्तेजना—irritation
अफ़ारा—tympanitis
वमनकारी—emetic
सिरकाम्ल—acetic acid
अम्लाधिक्य—hyperchlorhydria

चाय क़हवा और कोको

कैफ़ीन—caffein
कोको—Cocoa

टैनिन—tannin
सुगन्धि युक्त तैल—essential oils
गीन के प्रयोग—Expts of Green (Brit. Med. Journ. 1889, I, 91)
कॉफ़ी, क़हवा } coffee
श्वासप्रश्वास क्रिया—respiration
स्पन्दन—pulsation; beating
थियोब्रोमीन—theobromine
सोडा—soda bi carb
दाह—irritation
क्षुधा हीनता—loss of appetite
बेड टी—bed tea
स्नायविक संस्थान—nervous system
कम्पन—tremors
अनिद्रा—insomnia
'ओवलटीन'—Ovaltine
बोर्नविटा—Bournvita

मद्यपान

उत्तेजक—stimulant
शिथिल—depress
वृहत् मस्तिष्क—cerebrum
मध्य मस्तिष्क—midbrain
मन—higher centres
निद्रा, ताप-केन्द्र—sleep temperature centre
शमन—depression
स्नायविक कोष—nerve cells
चेतनता—consciousness
लुप्त—lost
अनियमित—irregular
रक्तचाप—blood pressure
टॉनिक—tonic
ओषदिकृत—oxidised
भोजनान्तर—post cibum
नोषजन—nitrogen

तम्बाकू और पान

निकोटीन—nicotine
आमाशय में घाव—gastric ulcer

पायरीडीन—pyridine
उपवृक्क—suprarenal
बेंज़पाइरीन—benzpyrine
कैन्सर—cancer

भारतीय भोजन के कुछ दोष

वसा अम्ल—fatty acids
वैधानिक नियम—legislation

भोजन बनाना

सुपच—easily digestible
निरापद—harmless
कोलेजन—collagen
जिलेटीन—gelatin
डेक्सट्रिन—dextrin
लेक्टेलब्यूमिन—lactalbumin
थक्के के रूप में जमना—coagulation
पोषण शक्ति—food value
एसकार्बिक एसिड ऑक्सिडेज—ascorbic acid oxidase

———
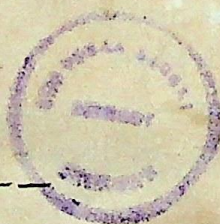
rine

ation

—

ation
value
सडेज-
idase